



UNIVERSAL  
LIBRARY

**OU\_182499**

UNIVERSAL  
LIBRARY



# OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. <sup>H</sup> 81.01 Accession No. G 11 2405-

Author S 23 B

Title साम्बाल नलि नी मैठन  
भैरव - प्रिये मणि महाली

This book should be returned on or before the date  
last marked below.

२५२ ५२५







# भक्त-शिरोमणि महाकवि सूरदास

---

लेखक  
नलिनीमोहन सान्याल, एम० ए०,  
भाषातत्त्वरत्न

---

भूमिका-लेखक  
राय बहादुर शुकदेव बिहारी मिश्र बी० ए०  
( मिश्रबन्धु में से एक )

---

प्रकाशक  
रामनारायण लाल  
पब्लिशर और बुकसेलर  
इलाहाबाद

प्रथम संस्करण ]

१९३८

मूल्य १]

Printed by RAMZAN ALI SHAH  
at the National Press,  
Allahabad.

# भक्त शिरोमणि महाकवि सूरदास

( जीवनी तथा काव्यालोचना )

## भूमिका

१३६ पृष्ठों की इस उत्कृष्ट पुस्तक का संग्रह तथा रचना श्रीयुत नलिनीमोहन सान्याल एम० ए० भाषा तत्वरत्न ने की है। हिन्दी का शौक रखने से हमें इतना विशेष लाभ हुआ कि कई ऐसे मानसमित्र प्राप्त हुए जिनसे हमारा साक्षात्कार कभी नहीं हुआ है। सान्याल महाशय भी हमारे ऐसे ही मित्रों में से एक हैं। यह मित्रता इनसे तथा कई इतर सज्जनों से बहुत प्राचीन काल से चली आती है। अस्तु।

हमारे सान्याल महोदय नदिया शान्तिपुर के निवासी श्रीयुत हरिमोहन सान्याल के सुपुत्र हैं। आपका जन्म अक्टूबर १८६१ में हुआ था। आपने पहले बाटनी में एम० ए० १८८५ में पास किया और फिर हिन्दी में १९२१ में। इस बार आपने प्रथम कक्षा में ऊपर स्वर्ण पदक भी प्राप्त किया। कई साल आप डिबीज़नल स्पेक्टर स्कूलस रहे। कुछ समय युनिवर्सिटी में हेडमास्टर, प्रिंसिपल एवं इन-पोस्ट-ग्रेजुएट हिन्दी लेक्चरर रहे। आपने बँगला भाषा में ११ उत्कृष्ट ग्रन्थ रचे और अँगरेज़ी में मीरा बाई पर एक ग्रन्थ बनाया। 'हिन्दी में इस ग्रन्थ के अतिरिक्त आपने तीन सुन्दर ग्रन्थ रचे हैं, अर्थात् ( १ ) तुलनामूलक भाषाविज्ञान की उपक्रम-शिका, ( २ ) समालोचनातत्व, काव्य रहस्य, कला तत्व और रहस्यवाद-तत्व तथा ( ३ ) मोहन माला ( छोटी गर्ल )। हमारे बाबू साहब के ग्रन्थ बहुत गम्भीर विषयों पर होकर उच्चकोटि के

पांडित्य से पूर्ण हैं। “ भक्त-शिरोमणि ” सूरदास में आपने ऐतिहासिक, साहित्यिक, धार्मिक तथा समालोचना-गर्भित परमोच्च लेख-प्रणाली का परिचय दिया है। यह पूरा ग्रन्थ एक प्रकार से सूरदास की समालोचना है। उद्धरण पर्याप्त संख्या में हैं, किन्तु वर्णनों को पुष्ट करने के लिए आये हैं, न कि केवल सौर साहित्य का स्वाद चखाने को। इन १३६ पृष्ठों में हमारे सान्याल महोदय ने बहुत करके ११ विषयों पर कथन किये हैं। हिन्दी साहित्य की उत्पत्ति और क्रान्ति में ३ पृष्ठों द्वारा थोड़े में बहुत कुछ कहने का सफल प्रयत्न हुआ है। जीवन चरित्र भी प्रायः छै पृष्ठों में है। इसमें आपके निष्कर्ष हमारे विचारों से भी प्रायः सब के सब मिलते हैं।

तीसरे विवरण से सूरदास के पदों का उद्धरण हाने लगता है। इनमें छन्दोभंग भी आ गये हैं। इसका कारण यही समझ पड़ता है कि एक तो गान के विषय में मृदु उच्चारण, प्लुत आदि के द्वारा गाने में छन्दोभंग निकल जाते हैं, सो ऐसे मौकों पर लोग इस त्रुटि पर ध्यान कम देते हैं, दूसरे सूरदास एक बड़ेही पूज्य और लब्ध-प्रतिष्ठ कवि हैं, सो भक्ति-प्राचुर्य के कारण आप ने ऐसे महाकवि के पदों को खराद पर चढ़ाना शायद योग्य न समझा, नहीं तो वे छन्दोभंग बहुत सुगमता पूर्वक निकाले जा सकते थे। मामला ऐसा होता है कि लेखकों की असावधानी से प्राचीन कवियों की रचनायें सदैव बिगड़ा करती हैं और यदि उन्हीं के आदर वश वे अशुद्धियाँ विज्ञ सम्पादकों द्वारा हटाई न जावें, तो कुछ दिनों में ग्रन्थ ऐसी भद्दी भूलों से भर जावेगा कि पढ़ने में तादृश आनन्द न आवेगा। फिर भी बहुतेरे समालोचक तक हमारे इस विचार को अमान्य समझते हैं। अपनी सम्पादन प्रणाली से हमारे सान्याल साहब भी उन्हीं में समझ पड़ते हैं। ऐसी दशा में सूरदास पर भारी श्रद्धा के

कारण आपने जो कृन्दोभंग न हटाये, उस पर शायद प्रिय पाठक सद्भाव समझ कर ध्यान न देंगे, यही प्रार्थना है। और साहित्य का कथन दो पृष्ठों में हुआ है और कला का १४ में। इसमें बाबू साहब ने अच्छी प्रवीणता दिखलाई है। आप सूर को तुलसीदास से भी बढ़ कर मानते हैं। वात्सल्य और माखन-चोरी का हृदय-हारी वर्णन ६ पृष्ठों में हुआ है तथा संयोग शृंगार का २४ में। रास लीला ( १६ पृष्ठों ) में भी परमोत्कृष्ट पद संगृहीत है। सूर के कुछ अंगों में १५ पृष्ठ और भ्रमरगोत में २१ हैं। यहाँ निराकार, साकार अथच अन्य धार्मिक विषयों के भी निगूढ़ कथन हैं। शान्त रस ( ११ पृष्ठ ) एवं काव्य और सिद्धान्त ( १७ पृष्ठ ) में भी बहुत श्रेष्ठ विचार अंकित है। कुल मिलाकर ग्रन्थ बहुत ही सुपाठ्य और सद्बिचार पूर्ण है। आशा है कि पाठकों को इसके पठन एवं विचारों के परिशीलन से समुचित लाभ प्राप्त होगा।

|         |   |                                                                |
|---------|---|----------------------------------------------------------------|
| लखनऊ    | } | शुकदेव विहारी मिश्र ( राय बहादुर )<br>( मिश्रबन्धु में से एक ) |
| २२—४—२८ |   |                                                                |



## ग्रन्थकार का निवेदन

राय बहादुर पं० शुक्रदेव बिहारी मिश्र बी० ए० महोदय को आपके भूमिका के लिए असंख्य धन्यवाद देता हूँ। मेरी पुस्तक के उद्धरणों में कुछ छन्दोभङ्ग अवश्य हैं। वे सूरसागर में जैसे पाये गये हैं, वैसे ही उद्धृत किये गये हैं। पदों के छन्दों को सुधारने की चेष्टा मैंने नहीं की है, क्योंकि यह काम बहुत ही कठिन है। सूरसागर का शुद्ध संस्करण अभी तक नहीं निकला। काशी नागरी प्रचारिणी सभा इस विषय में चेष्टा कर रही है।

शान्तिपुर,  
२४ अप्रैल, १९३८

}

नलिनीमोहन सान्याल



## श्रीयुक्त नलिनीमोहन सान्याल, एम० ए०, भाषातत्त्वरत्न का परिचय

बङ्गाल-प्रान्त के नदिया ज़िले में शान्तिपुर नाम का एक नगर है। यह नगर प्राचीन काल से प्रसिद्ध है। शान्तिपुर और नवद्वोप में सात कोस का अन्तर है; दोनों भागीरथी के किनारे पर हैं। नवद्वोप महाप्रभु चैतन्य का और शान्तिपुर उनके भक्त अद्वैताचार्य का जन्म-स्थान है। इसी शान्तिपुर में श्रीयुक्त नलिनीमोहन सान्याल ने संवत् १९१८ के आश्विन महीने की पूर्णिमा के दिन जन्मग्रहण किया था। आपके पिता का नाम हरिमोहन सान्याल था। आप बङ्गाली ब्राह्मणों में वारेन्द्र-श्रेणी के हैं। किसी समय कान्यकुब्ज-देश से पाँच ब्राह्मण गौड़ देश में बुलाये गये थे। उनमें वात्स्यगोत्रज सुधानिधि के पुत्र कान्दड़ के भ्राता धराधर आपके वंश के आदिपुरुष हैं। धराधर से आपकी ३३ वीं पीढ़ी है। आपके पूर्वजों का शास्त्र-व्यवसाय था। परन्तु आपके पितामह कृष्ण-किशोर ने थोड़े ही वर्ष तक संस्कृत पढ़ कर उसे छोड़ दिया था और फारसी तथा अरबी का अभ्यास करके बड़े विद्वान् हुए थे। अँगरेज़ी की चर्चा आपके पितासे ही इस वंश में जारी हुई, परन्तु शास्त्र का अनुशीलन छूटने नहीं पाया।

श्रीयुक्त नलिनीमोहन के दो बड़े भाई थे। उनमें ज्येष्ठ किशोरीमोहन सन् १८७३ ईसवी में अलीगढ़ में नौकर थे। उस समय नलिनीमोहनजी की अवस्था १२ वर्ष की थी और अलीगढ़ में आकर आप ज़िला-स्कूल के पाँचवें दर्जे में पढ़ने लगे। सन्

१८७४ ई० की जनवरी में आप अपने मँझले भाई प्यारीमोहन के साथ दिल्ली गये और वहाँ के कालेज में एक वर्ष तक पढ़ा। सन् १८७५ ई० में आपके भाइयों की आगरे को तब्दीली हुई और आप आगरे में आकर आगरा-कालेज के तीसरे दर्जे में प्रविष्ट हुए। सन् १८७६ ई० की द्वितीय श्रेणी की वात्सरिक डिपार्टमेण्टल परीक्षा में आप युक्त-प्रान्त में तृतीय स्थान प्राप्त कर पाँच रुपये मासिक वृत्ति के अधिकारी हुए थे। सन् १८७७ ई० में आपने आगरा-कालेज से एण्ट्रेन्स-परीक्षा पास की। इस प्रान्त में रहने के समय आपने हिन्दी, उर्दू, फ़ारसी और कुछ-कुछ अरबी भी सीखी थी। सन् १८८० ई० में आपने पटना-कालेज से एफ़० ए०, और सन् १८८४ ई० में कलकत्ता मेट्रो-पोलिटन इन्स्टिट्यूशन से बी० ए० पास किया। इसी कालेज से आपने सन् १८८५ ई० में एम० ए० भी पास किया। इस शेष परीक्षा में आपकी परीक्षा का विषय बाटनी वा उद्भिद्-विद्या था। सन् १८८६ ई० में आपने बङ्गदेश के शिक्षा-विभाग में नौकरी आरम्भ की। आप अठारह वर्ष तक गवर्नमेण्ट हाई स्कूलों, कालोजियेट स्कूलों और ट्रेनिंग स्कूलों के हेडमास्टर रहे और शेष चौदह वर्ष डेपुटी, असिस्टण्ट, एडिशनल तथा विभागीय इन्स्पेक्टर आफ़ स्कूलस् रहे। इसके बाद सन् १९१८ ई० की १ ली नवम्बर को आपने सरकारी काम से अवसर ग्रहण किया।

अब आपको पढ़ने-लिखने के लिए बहुत समय मिला और आप नाना विषयों की आलोचना में बहुत परिश्रम करने लगे। कुछ समय के बाद गवर्नमेण्ट ने आपको इस प्रान्त के सेण्ट्रल टेक्स्टबुक कमिटी का मेम्बर नियत किया। आपके आलोच्य विषयों में हिन्दी-भाषा और साहित्य अन्यतम है। इधर सन् १९२१ ई० में कलकत्ता-युनिवर्सिटी में हिन्दी में भी एम० ए० की

परीक्षा देने का नियम जारी हुआ। आपने सुना कि उस वर्ष कोई परीक्षार्थी इस परीक्षा के लिए अग्रसर नहीं हो रहा है। उस समय परीक्षा के दो ही तीन महीने बाकी थे। ६० वर्ष की अवस्था में आपही परीक्षार्थी खड़े हो गये और प्रथम विभाग में उत्तीर्ण होकर सौ रुपये मूल्य का एक सुवर्ण-पदक और दो सौ रुपये मूल्य की पुस्तकों से पुरस्कृत हुए। अतएव आपही हिन्दी-भाषा के सर्व-प्रथम एम० ए० हैं।

आपने हिन्दी-भाषा तथा साहित्य को अपनाया है। यद्यपि आप बँगला और अँगरेज़ी मासिक पत्रों में भी लेख लिखते हैं, तथापि आपके हिन्दी-लेखों की संख्या अधिक है। आपकी “तुलनामूलक भाषा-विज्ञान की उपक्रमणिका” नामक पुस्तक बहुत महत्त्वपूर्ण है और अब उसका द्वितीय संस्करण भी प्रकाशित हो गया है।

हिन्दी पत्रों में आपके नाना विषयों पर गवेषणापूर्ण लेख सर्वदा निकलते रहते हैं।

आपने अँगरेज़ी-भाषा में भी हिन्दी-साहित्य के विषय में लिखा है। आपके बँगला-लेखों का उल्लेख करने का प्रयोजन नहीं। केवल इतना ही कहना है कि आपका “भारतवर्षे लिपि-विद्यार विकास” और “भक्तप्रवर महाकवि सूरदास” नामक ग्रन्थ कलकत्ता-युनिवर्सिटी से छपकर प्रकाशित हुए हैं।

आपके तीन पुत्र हैं जिनमें दो एम० ए० हैं। उनमें एक मनसिज सान्याल कलकत्ते में काम करते हैं, और एक विनायक सान्याल कृष्णनगर गवर्नमेन्ट कालेज में अध्यापक हैं। आप ७ वर्ष तक कलकत्ता-युनिवर्सिटी के हिन्दी-भाषा और साहित्य के अध्यापक थे।

महादेवसिंह शर्मा, एम० ए०

## भाषा-विज्ञान की भूमिका से उद्धरण

सन् १९१६ ई० में जब मैं कलकत्ते में श्रीविशुद्धानन्द सरस्वती-विद्यालय का प्रिन्सिपल था, मैंने मारवाड़ी-भाषा का एक व्याकरण लिखा था। मैं चाहता था कि उसकी भूमिका में मैं हिन्दी-भाषा का एक संक्षिप्त ऐतिहासिक विवरण लिख दूँ। लिखना आरम्भ किया, समाप्त भी किया, पर दिखाई दिया कि मूल-पुस्तक से भूमिका का कलेवर बहुत भारी हो गया है और उसमें ऐसे विषयों की अवतारणा की गई है जो भाषा-विशेष के व्याकरण के उपयोगी नहीं हैं। उसमें सार्वजनिक भाषा की आलोचना अधिक थी। अतएव मैं मारवाड़ी-व्याकरण के सम्पूर्ण करने का विचार छोड़कर एक ऐसी पुस्तक की रचना में लग गया जिसमें तुलनामूलक भाषा-विज्ञान की मुख्य मुख्य बातों की आलोचना रहे। इसके लिखने में एक वर्ष लग गया। समाप्त होने के बाद मुझे यह बहुत ही संक्षिप्त मालूम हुई। मुझे सन्तोष न हुआ। मैंने उसे बढ़ाना चाहा। इस उद्देश से मैं भाषा-विज्ञान के प्रसिद्ध लेखकों के ग्रन्थों की आलोचना करने और उनमें आवश्यक बातों का नोट करने लगा। इस प्रकार पाँच वर्ष के परिश्रम के बाद परमात्मा की कृपा से ग्रन्थ समाप्त हुआ। जैसे जैसे लिखता गया, इसका एक एक अध्याय “सरस्वती” पत्रिका में प्रकाशित करवाता गया। जब सब अध्याय प्रकाशित हो गये तब उन सब को एकत्र कर पुस्तकाकार छापने के लिए प्रयाग के प्रसिद्ध छपाखाना इण्डियन प्रेस में भेज दिया। अब यह छप गई है।

मैं उधर रोज़ १०/१२ घंटे लिख पढ़ लेता था। वार्धक्य के

कारण अब दो तीन घंटों से अधिक मानसिक श्रम नहीं कर सकता ।

शान्तिपुर (नदीया) }  
 आश्विन पूर्णिमा, सं० १९९३ } नलिनीमोहन सान्याल

श्रीयुक्त नलिनीमोहन सान्याल एम० ए० भाषातत्त्व-  
 लिखित पुस्तकों तथा लेखों की सूची

## बंगला

१—भारतवर्षे लिपि-विद्यार विकाश ( कलकत्ता विश्व-  
 विद्यालय )

२—श्रुष्टि-रहस्य

३—वैदिक ओ पौराणिक आलोचना

४—आलोचना ओ कल्पना

५—भक्तप्रवर महाकवि सूरदास ( कलकत्ता विश्वविद्यालय )

६—सुभद्राङ्गी—ऐतिहासिक उपन्यास

७—कुरल—तिरुवल्लुवरैर नीतिविषयक सरस तामिल  
 काव्यैर वङ्गानुवाद, गवेषणापूर्ण दीर्घ भूमिका तथा परिशिष्ट सह

८—राजा राममोहन राय—जीवनी, सार्वजनीन धर्म ओ  
 विश्वमानवता ।

९—योग—प्रत्यक्ष-सापेक्ष ओ प्रत्यक्ष-निरपेक्ष

१०—विविध प्रसङ्ग

११—ग्रीक ओ रोमान उपाख्यानमाला

## अङ्गरेजी

## हिन्दी

पुस्तकें—( छपी हुई )

१—तुलनामूलक भाषा-विज्ञान की उपक्रमणिका ( द्वितीय-संस्करण ) । प्रकाशक रामनारायण लाल, प्रयाग, मूल्य सजिल्द ३॥॥ ( यह पुस्तक हिन्दी में एम० ए० पढ़ने वालों की उपयोगी है, और कई विश्वविद्यालयों में एम० ए० की पाठ्य है ।

२—समालोचना-तत्त्व, काव्य-रहस्य, कला-तत्त्व और रहस्य-वाद-तत्त्व । प्रकाशक रामनारायण लाल, प्रयाग, मूल्य सजिल्द १॥॥

३—मोहन माला ( क्लोटी गल्पें ), प्रकाशक इन्डियन प्रेस लि., प्रयाग, मूल्य ॥=॥

१—भक्त-शिरांमणि महाकवि सूरदास—जीवनी, काव्यालोचना और चुने हुए पद—प्रकाशक रामनारायण लाल, प्रयाग

पुस्तकें—( छपनेवाली हैं )

१—दार्शनिक लेखमाला, जिसमें रहेंगे

( १ ) सत्य-प्रतिष्ठा—सरस्वती

( २ ) ईश्वर का अस्तित्व-विषयक सहज-ज्ञान—कल्याण ( गोरखपुर )

( ३ ) मनुष्य का चरम लक्ष्य—कल्याण

( ४ ) योग—प्रत्यक्ष-सापेक्ष और प्रत्यक्ष-निरपेक्ष—कल्याण

( ५ ) बौद्ध धर्म का स्वरूप और परिणाम—सरस्वती, मई १९२४

२—कई दर्शनों की उत्पत्ति-विषयक लेखमाला, जिसमें रहेंगे

( १ ) रामानुज—सुधा, माघ १९८४, पृष्ठ ३६, और फाल्गुन,  
१९८४

( २ ) माध्व-सम्प्रदाय —सुधा, पौष १९८७, पृष्ठ ६३३

( ३ ) नवद्वीप—सरस्वती, जनवरी १९३१, पृष्ठ ६५

( ४ ) नदीया-गौरव—सरस्वती, जुलाई १९३१, पृष्ठ २

३—वैदिक और पौराणिक लेखमाला, जिसमें रहेंगे

( १ ) ( गङ्गा के ) वेदाङ्क पर दो बातें—गङ्गा, फाल्गुन, १९८८,  
पृष्ठ ४६०

( २ ) वैदिक साहित्य का काल—मनोरमा, मई १९२६, पृष्ठ  
१३१, और जून १९२६, पृष्ठ २५२

( ३ ) पुराण-साहित्य की उत्पत्ति—वीणा, सेप्टेम्बर १९३२,  
[ पृष्ठ ८३३

( ४ ) शिवाङ्क—कल्याण १९३३

४—वैष्णव धर्म की उत्पत्ति और विकास—सुधा, श्रावण १९८६,  
पृष्ठ ५३ और भाद्रपद, १९८६, पृष्ठ १८६

५—उपदेशमूलक लेख-माला, जिसमें रहेंगे

( १ ) रमा का गौना—सुधा, जनवरी १९३६, पृष्ठ ६४७

( २ ) चरित्र—सुधा, जुलाई १९३६,

( ३ ) आशावाद—सुधा, सेप्टेम्बर १९३६

६—बिहारी भाषाओं की उत्पत्ति और विकास—गङ्गा,  
जनवरी १९३३

७—भाषा-तत्त्व-विषयक लेखमाला, जिसमें रहेंगे

( १ ) प्राकृत-भाषा—माधुरी, पौष १९८२, पृष्ठ ७१८

( २ ) संस्कृत-भाषा—माधुरी, आषाढ़ १९८३, पृष्ठ ७५७

( ३ ) हिन्दी-भाषा पर फारसी और अरबी शब्दों का प्रभाव  
—सरस्वती, मार्च १९२४, पृष्ठ ३५५

८—विद्यापति-विषयक लेखमाला, जिसमें रहेंगे

( १ ) कीर्तिलता—माधुरी, माघ १९८४, पृष्ठ ६३

( २ ) विद्यापति—माधुरी, श्रावण १९८५, पृष्ठ ४५

( ३ ) विद्यापति—“लेखमाला” ( मुज़फ्फरपुर ) वसन्तोत्सव  
१९८५

९—धर्म-विषयक सरस लेखमाला, जिसमें रहेंगे

( १ ) लुका-द्विपी—सरस्वती

( २ ) आवाहन—सरस्वती, सितम्बर १९३०, पृष्ठ ३२३

१०—वैज्ञानिक लेखमाला ; जिसमें रहेंगे

( १ ) जीवों का विवर्तन—सरस्वती, जनवरी १९२४, पृष्ठ १८

( २ ) जीव की नित्यता—माधुरी, माघ १९८१, पृष्ठ ७५७

( ३ ) नृ-विज्ञान—माधुरी, चैत्र १९८३, पृष्ठ ३२३

( ४ ) जड़-विज्ञान का नवीन रूप—सुधा, १९८७, पृष्ठ ३०६

११—विविध-विषयक लेखमाला, जिसमें रहेंगे

( १ ) कुरल—सरस्वती ( २ ) दशरथ-जातक—वीणा

( ३ ) रवीन्द्र नाथ के काव्यों में अतीन्द्रियता—उत्थान  
( रायपुर ), पहली संख्या

( ४ ) समस्यामूलक सरस साहित्य—वीणा, सितम्बर  
१९३६, पृष्ठ ६४३

( ५ ) शक्ति-परिचय—आकर्षण (दिल्ली) अक्तूबर १९३३

१२—इनके अतिरिक्त

( १ ) काशी नागरी-प्रचारिणी सभा के कोशोत्सव “ स्मारक-  
संग्रह ” में “रवीन्द्रनाथ ठाकुर ”

( २ ) द्विवेदी अभिनन्दन-ग्रन्थ में “सूरदास का काव्य और  
[ सिद्धान्त ।”

( ३ ) मैथिली-काव्य-मान में “ भरत ”

# भक्त-शिरोमणि महाकवि सूरदास

( जीवनी तथा काव्यालोचना )

क—उपक्रमणिका

( १ ) हिन्दी साहित्य की उत्पत्ति तथा क्रमोन्नति

११६१. खृष्टाब्द में मुसलमानों के द्वारा दिल्ली-विजय के बाद यद्यपि भारतवर्ष में अनेक हिन्दू-राज्यों का लोप हो गया था और राजस्थान के अनेक सुदृढ़ दुर्ग मुसलमानों के अधिकार में आ गए थे, तथापि समग्र राजपूत जाति सम्पूर्ण रूप से उनके वश में नहीं आई थी। इस विप्लव के समय ही उत्तर-भारत की प्रादेशिक भाषासमूह का अभ्युदय हुआ था। इस समय राजस्थान में ही अधिक चाञ्चल्य दृष्ट हुआ था। अपनी स्वाधीनता की रक्षा के निमित्त प्रत्येक राजपूत नरपति को अशेष चेष्टा करनी पड़ी थी और सर्वदा युद्ध-विग्रह में लगा रहना हुआ था। प्रत्येक हिन्दू-राजसभा में कोई न कोई भाट वा चारण रहता था। वह अपने राजा तथा राजवंश के वीरत्व की कहानियाँ कविता में रचकर वीणा की सहायता से उन गाथाओं को राजसभा में व अन्यत्र गाता था। इस उत्तेजना के समय चारणों को विषयों का अभाव न था और अपने अपने राजाओं से यथेष्ट उत्साह तथा सहायता पाने के कारण वे अपनी अपनी रचनाओं के उत्कर्ष के लिए यत्नवान हो सके थे। भाटों का गीति-काव्यसमूह ही हिन्दी साहित्य की आदि रचनाएँ हैं, और महाराज पृथ्वीराज का सभा-कवि चन्द्रवरदाई ही उन सब कीर्ति-गाथा-रचयिताओं में सर्वश्रेष्ठ है।

षुद्धीय पञ्चदश शताब्दी के प्रारम्भ में हिन्दी साहित्य में एक नवीन विकास का सूत्रपात हुआ था। उत्तर-भारत में इस समय जो धर्मान्दोलन उपस्थित हुआ था वही इसका मूल है। मुसलमान विजय के परिवर्ती कई शताब्दी तक हिन्दुओं की परिस्थिति अति शोचनीय हो रही थी। पठान राजत्व-काल में मुसलमानों ने हिन्दुओं पर अनेक अत्याचार किया था। अनेक देवमन्दिर उत्पाटित तथा चूर्णीकृत हुए थे, अनेक देव-देवियों की मूर्तियाँ असम्मानित हुई थीं और अनेक शास्त्र-ग्रन्थादि नष्ट किये गए थे। उस समय हिन्दूगण भय से त्रस्त रहते थे। उनमें से बहुतेरे बाध्य होकर मुसलमान धर्म में दीक्षित हुए थे। इस दुर्दिन में उत्तर-भारत में जो सब धर्मान्दोलन उपस्थित हुए थे, उनके द्वारा मृत-प्राय हिन्दू धर्म फिर से सञ्जीवित हो उठा था। शङ्कराचार्य के अद्वैतवाद में कितनी ही यौक्तिकता क्यों न हो, वह जनसाधारण का हृदयग्राही न हुआ था। इस कारण कई शताब्दियों के बाद रामानुजाचार्य ने जब अपने विशिष्टाद्वैतवाद के मत का प्रचार किया था, तब उस मत ने सहज में ही सफलता प्राप्त की थी। परमात्मा के साथ एकत्व-लाभ करने की आशा मानव-मन को सन्तोष नहीं दे सकती। मनुष्य ऐसे एक देवता को चाहता है, जिन्हें वह अनायास ही अनुभव कर सके, जिन पर वह सुखदुःख में सब समय निर्भर कर सके, जिन्हें वह अपना अभाव-अभियोग जना सके, जिनकी वह सेवा-भक्ति कर सके, जिनको वह हृदय के साथ प्यार कर सके। रामानुज के धर्म में भगवान् सेव्य हैं और मनुष्य सेवक। प्रायः सब धर्म-मतों में यह भाव विद्यमान है। मृत्यु के बाद शिव हो सकूँगा इस आशा को अपेक्षा वैकुण्ठ में जाकर भगवान् के निकट रह सकूँगा यह आशा अधिक तृप्ति-दायक है। ऐसा धर्म ही मनुष्य का हृदयग्राही होता है।

इस प्रकार का मत ही पञ्चदश शताब्दी के प्रारम्भ में उत्तर-

भारत में प्रचारित होने लगा। इतने काल तक ब्राह्मणों ने ब्राह्मणे-तर जातियों को एक प्रकार से धर्मचर्चा से वंचित रक्खा था, किन्तु इस समय के धर्म प्रवर्तकगण सब श्रेणियों में अपना धर्ममत प्रचार कर सबको धर्म में समान अधिकार देने लगे। उनके धर्म-ग्रंथ संस्कृत-भाषा में लिखित न होकर देशीय भाषाओं में लिखे जाने लगे। इसका फल यह हुआ कि हिन्दी साहित्य की उत्तरोत्तर उन्नति होने लगी।

इस समय का धर्मान्दोलन चार विभिन्न शाखाओं में प्रवाहित हुआ था। दो धाराओं में साकारोपासना की पोषकता होने लगी, और दो धाराओं में निराकारोपासना की। साकारोपासना की दो धाराओं की एक में राम-भक्ति, और अपर में कृष्ण-भक्ति प्रचारित होती रही। दोनों में अवतारवाद स्वीकृत हुआ और मूर्तिपूजा प्रवर्तित हुई। उभय सम्प्रदाय ही वेद तथा पुराण को मानते थे।

निराकारवादी लोग अवतारवाद नहीं मानते थे और मूर्ति पूजा के विरोधी थे, यद्यपि वे अपने मतों की पोषकता के लिए कभी कभी पौराणिक आख्यान-समूह से उदाहरण उपस्थित करते थे। निराकारवाद वा निर्गुण-धारा दो शाखाओं में विभक्त हुआ—(१) ज्ञानाश्रयी शाखा और (२) शुद्ध प्रेम-मार्गी (अर्थात् सूफियों की) शाखा। ज्ञानाश्रयी शाखा के मूल स्तम्भ कबीर साहब थे। वह एक अद्वितीय प्रतिभा-सम्पन्न निर्भीक धर्मप्रचारक थे। उनके मत के आधार पर १५ वीं शताब्दी के मध्य भाग में सप्तदश शताब्दी के अन्त तक क्रम से अनेक धर्म-सम्प्रदाय गठित हुए थे—यथा, नानकपन्थी, दादूपन्थी, लालदासी, साधु, चरन-दासी, शिवनारायणी, राम-सनेही, प्राणनाथी। इन सब सम्प्रदायों के प्रवर्तकगण और शिष्य-मण्डली हिन्दी भाषा में असंख्य

काव्यग्रंथ लिख गये हैं । ये ग्रंथ शान्त-रसात्मक और भक्ति-माहात्म्य-कीर्तनकारी हैं ।

प्रेम-मार्गी वा सूफी सम्प्रदाय में कई फकीर कवि थे । उनमें से प्रसिद्धों के नाम हैं—मलिक महम्मद जायसी, कुतूबन, मंजन, ओसमान, शेख नबी, कासिम शाह, नूर महम्मद और फ़ाज़िल शाह । इन सभी ने प्रेमगाथाओं की रचनाकर दिखाने की चेष्टा की है कि जिस प्रेमतत्त्व का आभास लौकिक प्रेम में पाया जाता है, उसी के उत्कर्ष के द्वारा ईश्वर से मिलित होना सम्भव है । सूफियों के मत में समग्र जगत् ऐसे एक प्रेमसूत्र से आवद्ध है, जिसको अवलम्बन कर जोष प्रेममूर्ति भगवान को प्राप्त करने की राह में पहुँच सकता है । सूफी लोग सब रूपों में भगवान की प्रच्छन्न ज्योति देख कर मुग्ध होते हैं । मलिक महम्मद जायसी पद्मावत नामक काव्य की रचना कर हिन्दी साहित्य में अक्षय नाम रख गये हैं ।

उत्तर-भारतीय धार्मिक पुनरुत्थान के इतिहास में महात्मा रामानन्द का नाम अति उच्च है । यह महात्मा सम्भवतः १४०० से १४७० खृष्टाब्द तक जीवित थे । वह राम-नाम से ईश्वरोपासना के प्रवर्तक थे, और प्रचार करते थे कि जीवदेह-धारण करने के क्लेश से मुक्त करने को राम के अतिरिक्त और कोई समर्थ नहीं । राम में अनन्या भक्ति के बिना कोई मोक्ष-लाभ नहीं कर सकता । रामानन्द के शिष्यगण हिन्दी भाषा में पुस्तक लिखके अपना धर्ममत प्रचार करते थे । यह सब ग्रंथ कविता में रचित होते थे । भारतवर्ष अंगरेज़ाधिकृत होने के पहले प्रायः सब ग्रन्थ पद्य में रचित होते थे । भक्त-शिरोमणि तुलसीदास इसी सम्प्रदायभुक्त थे ।

महात्मा कबीर रामानन्द के शिष्य थे, किन्तु इन्होंने महाराष्ट्र-देशीय नामदेव का अनेक परिमाण में अनुकरण किया था ।

कबीर भगवान को राम, अल्लाह इत्यादि अनेक नामों से अभिहित करते थे, और अपने गुरु का अनुसरण कर राम-भक्ति की महिमा प्रचार करते थे। किन्तु उनकी राम-भक्ति अन्य प्रकार की थी। वह भक्ति विष्णु के अवतार राम के प्रति अर्पित न होकर निर्गुण निराकार ब्रह्म पर प्रयुक्त होती थी। कबीर असंख्य हिन्दी कविताओं के रचयिता हैं। तुलसीदास तथा सूफी कविगण ने हिन्दी की अवधी उपभाषा में अपने अपने ग्रंथों की रचना की है। कबीर साहब ने भोजपुरी भाषा का भी अवलम्बन किया था।

कृष्ण की उपासना कई शताब्दी पहले से ही प्रचलित थी। इस समय के धर्मान्दोलन के प्रभाव से वह बल-सञ्चय कर प्रबल होने लगी थी। इस सम्प्रदाय के धर्ममत ने भी कविता में रचित होकर हिन्दी साहित्य का पुष्टि-साधन किया था। राधाकृष्ण-विषयक रचना सब से पहले जयदेव के संस्कृत काव्य “गीत-गोविन्द” में पायी जाती है। विष्णुपुराण, वायुपुराण वा श्रीमद्भागवत में राधा का उल्लेख नहीं है।

राधाकृष्ण-विषयक धर्ममत के प्रचार-कार्य में श्रीमत् बल्लभाचार्य शीर्ष-स्थानीय हैं। इन दक्षिणी ब्राह्मण ने १४७६ ई० में काशी में जन्म ग्रहण किया था। इन्होंने मथुरा के निकट गोकुल में श्रीकृष्ण की मूर्ति स्थापित कर भारतवर्ष के नाना स्थानों में अपना मत प्रचार किया था। १५३१ ई० में इनकी मृत्यु हुई थी। इनके पुत्र विठ्ठलनाथ (१५१५-१५८५ ई०) बल्लभाचार्य-सम्प्रदाय के नेता हुए। पिता के चार और अपने चार शिष्यों ने ब्रजभाषा में राधाकृष्ण की लीला-विषयक उच्चकोटि के काव्य निर्माण किये थे। विठ्ठलनाथ ने इन आठों को “अष्टकृप” नाम से अभिहित किया था। इसके अनन्तर ब्रजभाषा में राधाकृष्ण की लीला-विषयक असंख्य काव्य रचित होते गये, और हिन्दी की

ब्रजबोली ही काव्य रचना की सर्वोत्तम तथा सर्वोपयोगी भाषा मानी गयी है ।

अष्टाक्षर के कवियों में वल्लभाचार्य के चार शिष्यों के नाम हैं—सूरदास, कृष्णदास पय-आहारी, परमानन्द दास और कुम्भन दास, और विठ्ठलनाथ के चार शिष्यों के नाम हैं—चतुर्भुजदास, क्रीत स्वामी, नन्ददास और गोविन्ददास । इनमें सूरदास ही सर्वश्रेष्ठ थे । नन्ददास भी एक बड़े कवि थे ।

## ( २ ) सूरदास का जीवन-चरित

सूरदास के जन्म तथा मृत्युकाल के सम्बन्ध में निश्चयता-पूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता । चैतन्य महाप्रभु का जन्म १४८५ ई० में हुआ था । कुछ प्रमाण मिले हैं कि महात्मा सूरदास का जन्म चैतन्य महाप्रभु के जन्म के एक वर्ष पहले हुआ था, और उनकी मृत्यु उनकी ७५ से ८० वर्ष की आयु के भीतर हुई थी । डा० ग्रीयरसन तथा मिश्रबन्धुओं ने कहा है कि सूरदास का जन्म १४८४ ई० में, और अनुमान किया है कि उनकी मृत्यु १५६३ ई० के लगभग, हुई थी । ६७ वर्ष की अवस्था में उन्होंने सूरसारावली, और उसके कुछ समय के बाद साहित्य-लहरी लिखी थी । साहित्य-लहरी का रचना-काल उसी ग्रंथ में दिया हुआ है । उससे विदित होता है कि वह ग्रंथ १५५० ई० में लिखा गया था । सूरसारावली में सूरदास ने लिखा है कि उन्होंने ६७ वर्ष की अवस्था में उसकी रचना समाप्त की थी । यदि सूरसारावली और साहित्य-लहरी एक ही समय में लिखी गयी हों, तो सूरदास का जन्मकाल १४९४ ई० माना जा सकता है । दोनों ग्रंथ एक ही समय न भी लिखे गए हों । तब तो हमारा अनुमान मिथ्या हो जाता है । किन्तु यह निश्चयता-पूर्वक कहा जा सकता है कि, जब सूरसारावली सूरसागर की सूची है और

साहित्य-लहरी उसका संग्रहग्रंथ है, तब ये दोनों ग्रंथ सूरसागर के बाद संकलित हुए थे। यदि यथार्थ हो सूरसागर में लक्षाधिक पद रहे हों, तो कहना ही होगा कि सूरदास ने वृद्धावस्था में उसे समाप्त किया था। यदि सूरसारावली तथा साहित्य-लहरी के रचना-कालों में १० वर्ष का व्यवधान भी माना जाय तो सूरदास की मृत्यु १५६० ई० के निकटवर्ती किसी समय में संघटित हुई थी ऐसा अनुमान किया जा सकता है।

अब उनका वंश-परिचय जानने की तथा जन्ममृत्यु-स्थान का पता लगाने की चेष्टा करनी चाहिये। सूरदास के वंश के सम्बन्ध में दो विभिन्न मत प्रचलित हैं। गोस्वामी विठ्ठलनाथ के पुत्र गोस्वामी गोकुलनाथ “चौरासी वैष्णवों की वार्ता” नामक एक पुस्तक ब्रजभाषा गद्य में लिख गये हैं। नाभादासकृत “भक्तमाल” ग्रंथ में भी अनेक भक्तों का अतिसंक्षिप्त विवरण है। सरदार-कविकृत “सूरदास की दृष्टिकृत” नामक पुस्तक के अन्त में सूरदास का स्वरचित वंश परिचय कविता में वर्णित है ऐसा कहा गया है। उससे ज्ञात होता है कि प्रार्थजगोत्रीय जागत-वंश का ब्रह्मराव नाम का एक व्यक्ति सूरदास का पूर्वपुरुष था। पहले इस वंश में पृथ्वीराज का सभा-कवि चन्द उत्पन्न हुआ था। पृथ्वीराज ने उसे ज्वालादेश दान किया था। चन्द के चार पुत्र थे। उनमें प्रथम ज्वाला का राजा हुआ था। द्वितीय पुत्र का नाम गुणचन्द था। उसके वंश में हरिचन्द ने सुकवि की ख्याति प्राप्त की थी। उसका पुत्र आग्रा-वासी हुआ था और उसके ७ पुत्र थे जिनमें सूरजचन्द सर्वकनिष्ठ था। यही सूरजचन्द हमारे सूरदास हैं। उनके और सब भाई मुसलमानों के साथ युद्ध करते हुए निहत हुए थे। “सरस्वती” नामक हिन्दी मासिक पत्र के १९२६ साल की नवम्बर की संख्या में श्रीयुक्त रमाकान्त त्रिपाठी ने कविचन्द की वंशलता दी है, जो चन्द के एक वंशधर

श्रीनेनूराम ब्रह्मभट्ट के पास उन्हें मिली थी। उसके अनुसार नेनूराम जो चन्द से अधस्तन २८ पुरुष हैं और सूरदास षष्ठ पुरुष थे—यथा ( १ ) चन्द, ( २ ) भल्लचन्द, \* ( ३ ) सीताचन्द, ( ४ ) वीरचन्द, ( ५ ) हरिचन्द और ( ६ ) रामचन्द। रामचन्द के छ पुत्रों में सूरदास सब से छोटे थे और निःसन्तान थे। किन्तु यह वंशलता घोर सन्देह-जनक है, कारण सूरदास का जन्म-समय चन्द से ३०० वर्ष से भी अधिक पीछे था। ३०० वर्ष में केवल ६ पुरुषों का होना नितान्त असम्भव है—१० या १२ पुरुष होने से सम्भव होता।

सूरदास के तथाकथित स्वरचित वंश-परिचय में कहा गया है कि वह जन्मान्ध थे, और इस कारण बाल्यकाल में एक बार कुएँ में गिर पड़े थे। उसमें ६ दिन पड़े रहने के बाद स्वयं श्रोत्रुणा ने उनको उठाकर उन्हें दिव्य-चक्षु दिये थे, और सूरदास के प्रार्थनानुसार उन्हें यह बर दिया था कि वह राधाकृष्ण के रूप के अतिरिक्त अन्य किसी देवता का रूप न देखेंगे और दक्षिण-देशस्थ प्रवल विप्रकुल के द्वारा उनके शत्रुओं का विनाश होगा। “ दक्षिण देशस्थ प्रवल विप्रकुल ” का क्या अभिप्राय है ठीक नहीं समझा जाता। उसका अर्थ महाराष्ट्रीय पेशवागण भिन्न और क्या हो सकता है? किन्तु उस समय पेशवागण कहाँ थे। अतएव मिश्रबन्धुत्रय,, लाला भगवान दीन इत्यादि का अनुमान है कि महाराष्ट्रियों के अभ्युदय के समय सूरदास नामक अन्य किसी कवि ने वह पद बनाकर सरदार कवि के ग्रंथ के अन्त में जोड़ दिया है।

---

\* चन्द वरदाई के द्वितीय पुत्र का नाम गुणचन्द और तृतीय का नाम भल्लचन्द था। अतएव इस लता के अनुसार सूरदास भल्लचन्द के वंश में जन्मे थे, गुणचन्द के वंश में नहीं।

तब सूरदास ने किस वंश को अलंकृत किया था ? “चौरासी वैष्णवों की वार्ता ” नामक ग्रंथ में गोकुलनाथ ने सूरदास को भाट नहीं कहा है। गोकुलनाथ ने अपने ग्रंथ में और मियाँ सिंह ने अपने “ भक्त विनोद ” नामक पुस्तक में सूरदास को ब्राह्मण बताया है। सूरदास की मृत्यु के समय विठ्ठलनाथ की अवस्था ४८ वर्ष की थी और उनकी मृत्यु १५८५ में हुई थी। गोकुलनाथ उनके द्वितीय पुत्र थे और सूरदास के देहान्त के समय सम्भवतः वह २० - २२ वर्ष के युवक थे। विठ्ठलनाथ के साथ सूरदास का सौहार्द था। इससे अनुमान होता है कि गोकुलनाथ के निकट सूरदास का वंश अपरिचित न था। “ चौरासी वार्ता ” तथा “ भक्त विनोद ” में सूरदास के शत्रु-विनाश का उल्लेख नहीं है, किन्तु कूप में गिरने का उल्लेख है। “ भक्तमाल ” तथा “ चौरासी वार्ता ” की उक्तियों के अनुसार सूरदास सारस्वत ब्राह्मण थे और उनके पिता का नाम रामदास था। उनके माता पिता दरिद्र थे और उनका जन्मस्थान दिल्ली के निकट साही ग्राम था।

अब जिज्ञास्य यह है कि सूरदास जन्मान्ध थे या नहीं ? इस सम्बन्ध में “ भक्तमाल ” ग्रंथ की अपेक्षा अधिक प्राचीन ग्रंथ का प्रमाण नहीं पाया जाता। “ भक्तमाल ” के अनुसार वह जन्मान्ध थे। “चौरासी वार्ता ” में उनकी जन्मान्धता का उल्लेख नहीं है। मिश्रबन्धुओं ने अपने “ नवरत्न ” पुस्तक में कहा है कि “ भक्तमाल ” की उक्ति पर आस्था स्थापन नहीं की जा सकती। सूरदास ने अपने काव्य में जिस प्रकार से ज्योति का, नाना प्रकार के वर्णों का तथा नाना हावभावों का वर्णन किया है और प्रकृति से जिस ढंग से नाना प्रकार की उपमाएँ चयन की हैं, वह चक्षुष्मान व्यक्ति के अतिरिक्त अन्ध के द्वारा केवल श्रुति की सहायता से संगृहीत नहीं हो सकता। एक किम्बदन्ती

है कि किसी समय एक युवती को देख कर चंचल-चित्त होने के कारण उन्होंने उस युवती के द्वारा अपनी आँखों को विद्ध करवा लिया था। जो कुछ हो, सम्भवतः वह जन्मान्ध नहीं थे, और पीछे वह अन्ध हो गये थे ऐसा अनुमान होता है।

“ भक्तमाल ” में लिखा है कि ८ वर्ष की आयु में उनका उपनयन हुआ था—और ठीक उसके पीछे वह माता पिता के साथ मथुरा दर्शन को गये थे। जब उनका घर लौटने का समय उपस्थित हुआ, तब सूरदास घर जाने को अस्वीकृत हुए। माता-पिता ने जब रोख्यमान होके उनसे पूछा, “ तुम्हें किसके आश्रय में ढोड़ जायँ ? ” तब बालक ने कहा, “ क्या श्रीकृष्ण का आश्रय सामान्य आश्रय है ? ” इसी समय एक साधु ने कहा, “ मैं इस बालक को अपने साथ रखूँगा। ” उसी समय से सूरदास माता पिता तथा आत्मीय-स्वजनों से विच्युत हुए थे। कहा जाता है कि उनका कृप में पतन इसके बाद हुआ था। उद्धारकर्ता जब चले जाने को उद्यत हुए, तब सूरदास ने उनका हाथ पकड़ लिया था, किन्तु वह सूरदास का हाथ छुड़ा कर चले गये थे। तब सूरदास ने उनसे कहा था—

बाँह छुड़ाये जात हो, निबल जानि के मोहिं।

हिरदै सों जब जाइहौ, मरद बदींगो ताहिं॥

मुझे बलहीन जान के हाथ छुड़ा के जा रहे हो, किन्तु यदि मेरे हृदय से जा सका, तो तुमको बहादुर कहूँगा। कृष्णकर्णामृत में इसी आशय का एक संस्कृत श्लोक मिलता है—

हस्तमुत्तिष्य जातोऽसि बलाद् बन्धो किमद्भुतम्।

हृदयाद् यदि नियोसि पौरुषं गणयामि ते॥

कहना कठिन है कि यह संस्कृत श्लोक सूरदास के पहले या पीछे रचित हुआ था।

“ चौरासी वार्ता ” के अनुसार सूरदास आगरा और मथुरा के मध्यवर्ती गौघाट नामक किसी स्थान में रहते थे और यहीं से वह महाप्रभु वल्लभाचार्य का शिष्यत्व ग्रहण कर उनके साथ गोकुल में श्रीनाथ जी के मन्दिर को गये थे । गोकुल में ही उन्होंने जीवन के प्रायः अन्त तक अवस्थान किया था । मृत्यु का समय निकटवर्ती हुआ है यह जब वह समझ गये थे तब पारासोलो नामक ग्राम में चले गये थे । यह समाचार पाते ही श्री विठ्ठलनाथ शीघ्र वहाँ उपस्थित हुए थे और सूरदास के जीवन के शेष मुहूर्त तक दोनों का वार्तालाप चलने लगा था ।

# भक्त-शिरोमणि महाकवि सूरदास

## १—सूर-साहित्य

सोलहवीं शताब्दी के प्रारम्भ से सत्रहवीं शताब्दी के मध्य-भाग तक हिन्दी-साहित्य के उत्कर्ष तथा समृद्धि का काल है। इस काल को प्राचीन हिन्दी-साहित्य का मध्याह्न-काल कह सकते हैं। वैष्णव सम्प्रदाय के प्रसिद्ध आचार्यों, कवियों तथा भक्तों का आविर्भाव इसी काल में हुआ था। कवि-श्रेष्ठ भक्त-शिरोमणि सूरदास और तुलसीदास ने इसी युग को अलंकृत किया था।

सूरदास ने “सूर-सारावली” में कहा है—“मैंने एक लक्ष पदबन्ध हरिलीला गायी है।” यदि उनकी यह उक्ति ठोक मानी जाय तो कहना होगा कि उनके पदों का बहुत थोड़ा अंश आज-तक आविष्कृत हुआ है। आधुनिक “सूरसागर” ग्रन्थ में जितने पद पाये जाते हैं, उनसे अधिक पद लिखने की कोई आवश्यकता नहीं मालूम पड़ती; क्योंकि अधिक-संख्यक पदों की अप्राप्तिके कारण किसी लीला के विवरण की अङ्गहानि नहीं हुई है।

सूरदास का सर्व-प्रसिद्ध ग्रन्थ है “सूरसागर”। इसमें उनके व्यक्तित्व की स्पष्ट छाप है। यह रामायण, इलियड, पैरैडाइज लास्ट, मेघनाद-बध की नाई Epic (महाकाव्य) नहीं है। भक्ति के आवेश में विह्वल हो सूरदास समय-समय पर भगवान् की एक-एक लीला के पदों की मौखिक रचना कर उन्हें गाते थे। सूर-सागर में श्रीमद्भागवत के क्रम का अनुसरण किया गया है। भागवत के विभिन्न स्कन्धों के जिन अंशों में भगवान् की लीलाएँ वर्णित हुई हैं, उन्हीं का अवलम्बन कर उनके भजन रचे गये हैं। उनमें से अधिकांश दशम स्कन्ध अर्थात् श्रीकृष्ण की ब्रजलीला-

विषयक हैं। किन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि सब पद केवल भागवत के ही आधार पर निर्मित हुए हैं; कारण भागवत में राधा का नाम नहीं है, न उसमें दान-लीला का प्रसङ्ग है। सम्भवतः राधा का नाम जयदेव के गीतगोविन्द तथा प्रचलित किम्बदन्तियों से गृहीत हुआ है।

सूरसागर यथार्थ ही एक अपूर्व ग्रन्थ है। यह प्रेम, काव्य तथा सङ्गोत की त्रिवेणी के रूप में मिलित होकर अन्त में सागर में परिणत हुआ है। यह रत्नाकर है—इसका एक-एक पद एक-एक रत्न है। जो सब पद आज तक आविष्कृत हुए हैं, उन्हीं को देखकर लोग विस्मय से भर जाते हैं, और उन्हीं से सूरदास कविश्रेष्ठ नाम के अधिकारी हुए हैं। भक्तगण उनके सूरसागर को मन्थनकर हरिभक्ति-रूप अमृत का आस्वादन करते हैं; काव्य-रसिकगण उसमें गोता लगाकर जिन रत्नों का उद्धार करते हैं, उनकी उज्ज्वलता से विमुग्ध हो जाते हैं। सङ्गीतप्रिय व्यक्तियों की तो बात ही क्या है? वे एक-एक पदोर्मि के नर्तन में आत्म-समर्पण कर विह्वल हो जाते हैं।

## २—सूरदासकी कला

सौन्दर्य-प्रियता मनुष्य की एक स्वाभाविक वृत्ति है—यहाँ तक कि सम्पूर्ण असभ्य समाज में भी सौन्दर्यानुराग परिलक्षित होता है। मनुष्य सुन्दर को चाहता है और सौन्दर्य-बोध उसकी प्रकृतिगत है।

इस विश्व में सर्वत्र ही माधुर्य फैला हुआ है। तारकाखचित नभोमण्डल, प्रभात का अरुणोदय, शशधर की शुभ्र कौमुदी, सागर का उद्दाम उच्छ्वास, जलद के नित्य नवीन रूप, सौदामिनी का चञ्चल प्रकाश, पर्वत की विराट् सत्ता, महीरूह का प्रशान्त अवयव, लता का मृदु वेष्टन, पुष्प की मधुर सुषमा, गजेन्द्र की

मन्थर गति, हरिण के पल्लवित शृङ्ग तथा कृष्णनयन, मयूर का विचित्र पुच्छ, इन्द्र-धनुष का मोहन वर्णविन्यास, श्यामल शस्य-क्षेत्र का तरङ्गायित आन्दोलन, शिशु का अहेतुक हास्य, तरुण-तरुणी का रूख-लावण्य, विहग का मनोमोहक कूजन, फूलों का मादक परिमल, फलों का तृप्तिकर आस्वाद, ग्रीष्मकाल में शीतल समीरण-स्पर्श इत्यादि अनन्त प्रकार के माधुर्य विश्व में विद्यमान हैं। पाँच इन्द्रियों की सहायता से इन माधुर्यों की अनुभूति होती है। संसार-चक्र से निपेषित साधारण लोग कदाचित् सब समय विश्व के माधुर्य-सम्भार का आस्वादन करने को असमर्थ हैं, किन्तु ऐसे एक श्रेणी के मनुष्य हैं, जिनकी सौन्दर्यानुभूति अति प्रबल है।

वे साधारण वस्तुओं के भीतर भी सौन्दर्य पाते हैं और वस्तु-समूह के परस्पर के भीतर जो सम्बन्ध है, उसका अनुभव करने को समर्थ हैं। वह विज्ञान के कार्य-कारण सम्बन्ध के अतीत है, यह सम्बन्ध-निर्णय किन्तु शिल्पी या कवि के निकट अति सहज है। प्राकृतिक वस्तुओं के साथ नर-नारी के हृदयावेगों का सम्बन्ध अनुभव करना एक विशेष शक्ति है। इस शक्ति को हम षष्ठ इन्द्रिय कह सकते हैं। प्रतिभावान् कवियों में यह षष्ठ इन्द्रिय विद्यमान है। वे इस इन्द्रिय की सहायता से शाश्वत सत्य का आविष्कार करने को तथा अपनी अपनी रचनाओं में विस्मय-कर चमत्कार का उत्पादन करने को समर्थ हैं।

कोई कवि जब किसी सुन्दर वस्तु का वर्णन करता है, क्या वह तब उसे जैसी देखता है ठीक वैसी ही अङ्कित करता है? चतुर शिल्पी प्रकृति का अनुकरण नहीं करता। प्रकृति में सब बातें चञ्चल तथा परिवर्तनशील हैं—सब वस्तुओं का अहरहः रूपान्तर हो रहा है। अतएव सम्पूर्णता का स्थायी आदर्श प्रकृति में कहीं नहीं मिलता। सम्पूर्णता एक आपेक्षिकता-वाचक शब्द

है—हम इतना ही कह सकते हैं कि अमुक अवस्था से अमुक अवस्था सम्पूर्णतर है। सम्पूर्णता का आदर्श केवल बड़े शिल्पियों के अन्तःकरण में रहता है। शिल्पी अपने अन्तर की सम्पूर्णता का आदर्श परिस्फुट करने की चेष्टा करता है। जिस सुन्दर वस्तु को वह आँखों से देखता है, वह उसे अपने आदर्श के अनुसार सुन्दरतर करना चाहता है।

सौन्दर्य को सम्पूर्णता दान करने से ही शिल्पी का काम समाप्त नहीं होता—उसको स्थायित्व-दान करना भी आवश्यक है। देखना चाहिए कि उसे जो सम्पूर्ण रूप दिया गया है, वह वस्तुगत स्थायी रूप है या नहीं। आदर्श सौन्दर्य स्थायी होता है। \* अस्थायी को स्थायी रूप देना ही शिल्प का चरम उत्कर्ष है। वास्तव भित्ति पर कल्पना को प्रतिष्ठित करना चाहिए। प्रतिभावान् शिल्पी कल्पित और वास्तव में सामञ्जस्य कायम रख सकता है। वास्तव कृषि को सम्पूर्णता के आदर्श पर गठित करना ही यथार्थ शिल्प है। वह परिवर्तन-परम्परा के भीतर अचल बनी रहेगी।

काव्य के दो उपादान हैं—भाव तथा भाषा। भाव न्यूनाधिक परिमाण में प्रायः सब कवियों में है। जिसमें नहीं है, उसके लिए कवियशःप्रार्थी होना बिड़म्बना है। भाव के प्रकाशन पर ही कवि का उत्कर्ष या अपकर्ष अवलम्बित है। अच्छा कवि नितान्त परिचित वस्तु को भी इस प्रकार से दिखा सकता है जिस रूप में उसे किसी ने कभी नहीं देखा हो। उसको काव्य-सृष्टि में भाव रूप-रूपान्तर में व्यक्त होना चाहता है। इसीलिए वह एक वस्तु के साथ दूसरी वस्तु का सादृश्य खोजता फिरता है और प्रायः उस सादृश्य की भाषा में अपना भाव व्यक्त करने की चेष्टा करता है। महाकाव्य का प्रधान

---

\* A thing of beauty is a joy for ever.—Keats.

सम्पद है उपमा । पहले, इस उपमा-प्रयोग में जो कवि जितना सिद्धहस्त होता था, वह उतना ही उच्च आसन प्राप्त करने को समर्थ होता था । कालिदास यह यश अर्जन कर गये हैं । विद्यापति भी इस यशसे वञ्चित नहीं । किन्तु गीति-काव्य में उपमा का अधिक प्रयोजन अनुभूत नहीं होता । गीति-काव्य में यदि भाव सरल होते हुए हृदय-तन्त्री पर आघात करे, तभी उसकी सार्थकता है । तथापि अल्पाधिक उपमा के बिना किसी कवि का काम नहीं चल सकता ।

सूरदास का परिचय उनके काव्य में है । श्रीकृष्ण के ईश्वरत्व-पर उनका अटल विश्वास था । इस विश्वास के वशवर्ती होकर उन्होंने आबाल्य गृहस्थाश्रम परित्याग कर श्रीकृष्ण के चरणारविन्दों में आश्रय लिया था, और उन्हीं के ध्यान और भजन में जीवन अतिवाहित किया था । भक्ति-रससे उनके प्राण पूर्ण थे । जब कभी उनका हृदय भावों से उद्वेलित हो उठता था, तभी उसे भाषा तथा छन्द में आवद्ध कर गान के द्वारा मूर्तिमान् कर डालते थे । उनके काव्य और जीवन में सम्पूर्ण समता लक्षित होती है ।

अब हमें देखना चाहिए कि सूरदास एक स्थायी सौन्दर्य अङ्कित कर गये हैं या नहीं ।

साधारण लोग विश्व के आनन्द को प्रयोजनीयता की दृष्टि से अनुभव करते हैं, वैज्ञानिकगण उसके भीतर अपूर्व शृङ्खला देखकर अभिभूत होते हैं, कविगण उसमें सौन्दर्य प्रत्यक्ष करते हुए उस सौन्दर्य को अपने आदर्श के अनुसार गठित करके उसे स्थायी बनाने के प्रयासी होते हैं, और भक्तगण अपने उपलब्धि क्षेत्र में एक अर्निवचनीय सत्ता का सान्निध्य अनुभवकर मुग्ध तथा कृतार्थ होते हैं । सूरदास शेषोक्त दो श्रेणियों के अन्तर्गत हैं । वह प्रतिभाशाली कवि और असाधारण भक्त हैं । उनका

काव्य रीतिकाव्य और महाकाव्य के मध्यवर्ती है। पदावली की सहायता से उन्होंने श्रीकृष्ण की वृन्दावन-लीला वर्णित की है। उनके अधिकांश पद ही सरल भाषा में रचे गये हैं, तथापि अनेक पद अलङ्कार-सङ्कुल हैं। अनेक स्थानों में उनको चेष्टा के द्वारा सादृश्य खोज लेना पड़ा है।

विश्व-सृष्टि जैसे वैचित्र्य-पूर्ण है, कवि-सृष्टि में भी उसी प्रकार नाना वैचित्र्य लक्षित होते हैं। विषय को एकमात्र रूप देने से ही उसकी रूप-ग्रहण-शक्ति निःशेषित नहीं हो जाती— वह अन्यान्य रूपों में भी व्यक्त हो सकता है। एक ही विषय भिन्न-भिन्न कवियों के पास भिन्न-भिन्न रूप ग्रहण कर सकता है। कविता के लिए कोई भी वस्तु पुरानी नहीं हो सकती। विद्यापति ने नायिका की चक्षुओं को नाना प्रकार उपमाओं के द्वारा व्यक्त किया है—

( १ ) नीरे निरञ्जन लोचन राता,

सिन्दूर-मण्डित (जनु) पङ्कज पाता।

स्नान के समय काजल धुल गया है, और जल लगकर चक्षुओं ने रक्तवर्ण धारण किया है, मानों पद्मदल पर ईषत् सिन्दूर का दाग लग गया हो।

( २ ) चञ्चल लोचन, बङ्क निहारनि,

खञ्जन-शोभा ताय,

जनु इन्दीवर, पवने ठेलल, अलीभरे उलटाय।

कजलयुक्त चक्षुओं की बाँकी चितवन से कृष्णतारकायें कोनों तक चली गयी हैं, मानो वायुसे सञ्चालित होकर पद्म भ्रमर के भार से उलटना ही चाहते हों।

( ३ ) लोचन जनु थिर भृङ्ग अकार,

मधु-मातल किये उड़इ न पार।

चक्षु की तारकायें मानो स्थिर भृङ्ग हैं; वे मधुपान में

विभोर होने के कारण क्या उनमें उड़ने की शक्ति ही नहीं ?  
[ किये = किथौं = किम्बा, अथवा = क्या ]

अब देखना चाहिए कि बाल-गोपाल की चक्षुओं की वर्णना में सूरदास ने किस प्रकार की उपमाओं का प्रयोग किया है—

( १ ) भ्रूकुटि विकट नयन अति चञ्चल,  
यह ढ़बि पर उपमा इक धावत ।  
धनुष देखि खञ्जन जिमि डरपत,  
नहिं सकत उठिबे, अकुलावत ।

भ्रूकुटि कुटिल है, नयन अतिशय चञ्चल हैं। मानो भ्रू-रूप धनुष देख के खञ्जन-द्वय भयभीत हो रहे हैं, उड़ न सकने के कारण आकुल हो रहे हैं।

( २ ) बने विशाल हरि लोचन लोल  
चितै चितै हरि चारु विलोकनि,  
मांगत है मन ओल ।

हरि के विशाल चञ्चल लोचनों की बड़ी शोभा हो रही है। सुन्दर दृष्टि के द्वारा बार-बार ताकते हुए वह दर्शकों के मनों को बन्धक के स्वरूप अपने अधिकार में लाना चाहते हैं।

( ३ ) चपल मनोहर चितवनी, राजत हैं भ्रुवभङ्ग,  
धनुषवान बस डारिकै, होत कोटी अनङ्ग ।

मनोहर चञ्चल कटाक्ष तथा बङ्किम भ्रू की शोभा देख के कोटि कामदेव धनुर्वाण त्यागकर उनके वश में आते हैं।

( ४ ) देखि हरिजू के नैनन की ढ़बि ।  
इहै जानि दुख मानि मनहुँ,  
अम्बुज सेवत जल में नित रवि ॥

सखी, हरिजी के नयनों की शोभा देख। इन नयनों की तुलना अपने साथ करते हुए कमल दुखी होकर मानों जल के

भीतर नित्य सूर्य देवकी तपस्या कर रहा है ( जिससे भविष्य में वह इन नयनों की शोभा पा सके ) ।

( ५ ) देखि री हरि के चञ्चल नैन,

खञ्जन मीन मृगज चपलाई, नहिं पटतर एक सैन ।

राजिवदल, इन्दीवर, सतदल, कमल कुसेसय जाति,

निसि मुद्रित, प्रातहिं विकसत, ये विकसत हैं दिन राति ।

अरुन सेत सिति, झलक एलक प्रति, को बरनै उपमाई,

मनु सरसुति गङ्गा जमुना मिलि सङ्गम कीन्हो आई ।

अवलोकनि जलधार तेज अति, तहाँ न मन ठहरात,

सूर स्याम लोचन अपार ऋषि, उपमा सुनि सरसात ।

हरि के चञ्चल नयनों को देख, खञ्जन, मीन और मृग की चपलता के साथ इनको एक चित्रवन की भी तुलना नहीं हो सकती । राजीव, इन्दीवर, शतदल, कमल और अन्यान्य कुशेशय जातीय पुष्पों के साथ भी इनका सम्पूर्ण सादृश्य कहाँ ? वे निशाकाल में मुद्रित रहते हैं और प्रातःकाल में विकसित रहते हैं । पर भगवान् के पलक से पल-पल में लाल, श्वेत, तथा श्याम आभा निकलती है, मानो गङ्गा, यमुना और सरस्वती का सङ्गम हो रहा हो । इस मिली हुई नदी की दृष्टिरूपी जलधारा का तेज अति प्रबल है । उसके सामने मन स्थिर नहीं रह सकता । इस अपार शोभा की उपमा सुनकर सूरदास का मन आनन्दित होता है ।

गोपाल के रोदन-काल के नेत्रों की शोभा भी देखिये—

( १ ) लकुट के डर डरन जैसे, सजल शोभित डोल,

नील नीरज दृग लसैं, मनो आसकन लोल ।

लाठी के भय से भीत नयन मानों जलपूर्ण डोल के समान शोभा दे रहे हैं । मानों नील पद्मों पर सुन्दर तुषार-कण शोभित हों ।

( २ ) मुख-छवि देखि हे नन्द-धरनि !

शरद-निशि के अश्रु अगनिन, इन्दु आभा हरनि ।

हे नन्द को गृहिणी, गोपाल के मुख की शोभा देख । मानो अगणित ताराओं के सदृश अश्रुकण शरत्कालीन निशा के चन्द्र की ज्योति को स्नान कर रहे हैं ।

( ३ ) जलज-मञ्जुल लोल लोचन, सरद-चितवन दीन,

मनहुं खेलत हैं परस्पर, मकरधुज द्वै मीन ।

पद्मों की नाई सुन्दर चञ्चल लोचनों की दीन दृष्टि देखने से अनुमान होता है कि दो मीन और कामदेव परस्पर साथ खेल रहे हैं ।

श्रीकृष्ण के मुख की शोभा के वर्णन में कैसी उपमायें व्यवहृत हुई हैं, ज़रा इसपर भी मुत्ताहज़ा फरमाइये—

( १ ) वदन चन्द-मण्डल की शोभा, अघलोकत सुख देत,

जनु जलनिधि मथि प्रगट कियो ससि, श्री अरु सुधा समेत ।

मुख में चन्द्रमण्डल की शोभा देख के मन आनन्दित होता है । मानो समुद्र को मथकर, लक्ष्मी तथा सुधा के साथ चन्द्र-को प्रकाशित किया है ।

( २ ) मुख छवि कहों कहाँ लगि माई !

मनो कञ्ज परकास प्रातही, रवि ससि दोऊ जात छिपाई !

मुखकी शोभा की अब कितनी व्याख्या करूँ ! मानों प्रातःकाल ही पद्म का विकास हुआ है और रवि-शशि दोनों-का पराभव हो रहा है ।

( ३ ) देखो सखि हरि को मुख चारु ।

मनहुं छिनाय लियों नन्दनन्दन, वा ससिको सतसारु ।

सखी, हरि के मुख को सुन्दर शोभा देखो । मानो नन्दनन्दन ने चाँद की सार-वस्तु को छीन लिया है ।

सूरदास के प्रधान अलङ्कार हैं—उपमा, रूपक और उत्प्रेक्षा । उनके अलङ्कार प्रायः स्वाभाविक हैं, किसी-किसी स्थान में कष्ट-कल्पना-सी लगती है, और कहीं-कहीं उपमाओं की प्रचुरता से मन व्यथित होता है; जैसे—

“ खञ्जन मीन मृगज चपलाई, नहिं पटतर एक सैन । ”

“ राजिवदल, इन्दीवर, सतदल, कमल कुसेसय जाति । ”

“ जानु जड्ड सुवटनि करभा, नाहिं रम्भा तूल । ”

“ बिम्ब अरु बन्धूक विद्रम, दामिनी डर भारि । ”

सूरदास की कविताओं में बहुधा एक ही प्रकार की तुलनाओं का उपयोग, पुनः पुनः हुआ है । इस कारण स्थान-स्थान पर जी ऊब उठता है—चन्द्र, चकोर, खञ्जन, भ्रमर, अम्बुज, मीन, धनुष, विद्रुम, हंस, दामिनी इत्यादि शब्द-मूलक अथवा उनके प्रतिशब्द-मूलक उपमाओं की भरमार है ।

तथापि सरल वर्णना पर ही सूरदास का ध्यान अधिक है । वर्णन-काल में उपमा तथा उपमा-मूलक अलङ्कार अपने आप आ गये हैं ।

सूरदास की उपमा, रूपक तथा उत्प्रेक्षा के अलग-अलग उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

( १ ) उपमा—

चन्द्रकोटि प्रकास मुख, अवतंस कोटिक भान,  
कोटि मन्मथ वारि कृषि पर, निरखि दीजत दान ।

भृकुटि कोटि कुदण्ड रुचि अवलोकननि सन्धान,  
कोटि वारिज नयन बड्क, कटाच्छ कोटिक बान ॥

( २ ) रूपक—

अद्भुत एक अनूपम बाग,

जुगल कमल पर गज कीड़त है, ता पर सिंह करत अनुराग ।  
हरि पर सरवर, सर पर गिरिवर, गिरि पर फूले कञ्ज पराग ।

रुचिर कपोत बसे ता ऊपर, ता ऊपर अमृत फल लाग ।  
फल पर पुहुप, पुहुप पर पल्लव, तापर सुक, पिक, मृगमद, काग ।  
खञ्जन धनुष चन्द्रमा ऊपर, ताऊ पर इक मनिधर नाग ।  
अङ्ग-अङ्ग प्रति और-और कृबि, उपमा ताको करत न त्याग ।  
सूरदास प्रभु, पियहु सुधारस, मानहु अधरनि के बड़ भाग ।

( ३ ) उत्प्रेक्षा—

चपल नयन भृकुटी नासापुट, सुनि सुन्दर मुख बैन,  
मानहु नृत्यक भाव दिखावत, गति लिये नायक मैन ।  
चमकत मोर चन्द्रिका माथे, कुञ्चित अलक सुभाल,  
मानहु कमलकोष-रस चाखन, उड़ि आये, अलिमाल ।  
कुण्डल लोल कपोलन झलकत, ऐसी शोभा देत,  
मानहु सुधासिन्धु में क्रीड़त, मकर पान के हेत ।  
सोभित वैजन्ती चरणन पर, श्वासा पवन झकोरि,  
मनहु ग्रीव सुरसरि बहि आवत, ब्रह्मकमण्डलु फोरि ।  
झलमलात भृगु की पद रेखा, सुभग साँवरे गात,  
जनु षट्पद्म एकै रथ बैठे, उदय किये अधरात ।  
बाँके चरन कमल भुज बाँके, अवलोकनि जु अनूप,  
मानहु कल्पतरावर विरवा, आनि रच्यो सुर भूप ।

इनके अतिरिक्त और भी अनेक अलङ्कार सूरदास के काव्य में मिलते हैं—व्यतिरेक, सन्देह, युक्ति, स्वभाषाक्ति, स्मरण, निदर्शन इत्यादि ।

( १ ) व्यतिरेक—

“देखरी हरि के चञ्चल नैन” इत्यादि पूर्वोक्त किसी-किसी पद में इसके उदाहरण पाये जाते हैं ।

( २ ) सन्देह—

देखि सखी, अधरन की लाली,

\*

\*

\*

\*

किथों तरुण तमाल बैलि चढ़ि, जुगफल बिम्बा पाके ।

\* \* \* \*

हंसत दसन एक सोभा उपजति, उपमा जाति लजाई ।

किथों बज्र कन लाल नगन खचि, तापर विद्रुम पांति ।

किथों अरुन अम्बुज बिच बैठी, सुन्दरताई आई !

( ३ ) स्वभावोक्ति—

जेंवत स्याम नन्द को कनियाँ,

कछुक खात कछु धरनि गिरावत, छवि निरखत नंदरनियाँ ।

\* \* \* \*

डारत खात लेत आपन कर, रुचि मानत दधि-दनियाँ,

आपुन खात नन्द मुख नावत, सो सुख कहत न बनियाँ ।

### ३—सूर-कविता में रस

अब पृष्ठने को बात यह है कि कौन-कौन भाव सूरदास के काव्य के विषयोभूत हैं, और उनको कौन-कौन नये रूप मिले हैं ? वे सब भाव क्या निर्दिष्ट सीमा में आबद्ध हैं, अथवा उनके भीतर असीमता को कोई व्यञ्जना है ?

मानव-जीवन की जो वेदनायें सार्वजनिक तथा सार्वकालीन हैं—जो वेदनायें क्या भारतवर्ष में, क्या अन्य देशों में, क्या सभ्य समाज में, क्या असभ्य समाज में, क्या प्राचीनकाल में, क्या वर्तमान समय में, सब क्षेत्रों में समान रूप से अनुभूत होती हैं—जो वेदनायें मन के निभृत अन्तःस्तल में छिपी रहती हैं—जो मनुष्य-प्रकृति को अति गम्भीर रूप में आन्दोलित करती हैं—जो मनुष्य-समाज के बन्धन-स्वरूप हैं—वे ही सूरदास की वर्णना के विषय हैं ! ग्रह-नक्षत्रों के अदृश्य बन्धनों के सदृश मानव-जाति के भीतर भी कुछ अदृश्य बन्धन हैं ! वे बन्धन इन्द्रिय-ग्राह्य नहीं, तथापि उनका आकर्षण अति प्रबल

है। प्रेम का आकर्षण अति शक्तिशाली है। यह इन्द्रियग्राह्य न होने पर भी, इसके कार्यों से इसका अनुमान होता है। यह अदृश्य वस्तु नाना प्रकार के सम्बन्धों में व्यक्त होती है, उनमें से इसके तीन रूप प्रधान हैं—माता और सन्तान के बीच में जो आकर्षण है, स्त्री और पुरुष में जो आकर्षण है और जीव और ईश्वर के बीच जो आकर्षण है, ये तीनों ही सूरदास के काव्य के विषय हैं।

विश्वनाथ कविराज ने कहा है कि जिस वाक्य में रस है, वही काव्य पदवाच्य है। अतएव रस ही काव्य की सार-वस्तु है। किसी विषय की दर्शन, श्रवण, पाठ व चिन्ता करने से जो चित्त विकार उत्पन्न होता है, अर्थात् जो सुख, दुःख, उत्साह, क्रोध, अनुराग, भय, विस्मय, वैराग्य इत्यादि भावों का उद्रेक होता है, वे भाव यदि साहित्य या शिल्प की सहायता से स्थायी रूप में अन्तःकरण को द्रवीभूत करते हों, तो रस-पद-वाच्य होते हैं। अलङ्कार-शास्त्रकारों ने नौ प्रकार के रसों का उल्लेख किया है—वीर, करुण, अद्भुत, हास्य, भयानक, वीभत्स, रौद्र और शान्त। कोई-कोई एक दशम रस का भी उल्लेख करते हैं—जिसका नाम है वात्सल्य। बहुतों ने वात्सल्य को शृङ्गार-रसान्तर्गत किया है, क्योंकि शृङ्गार रस प्रेम का रस है। भगवान् की उपासना तीन प्रकार से हो सकती है—कर्मयोग से, ज्ञान-योग से और भक्तियोग से। भक्तिमार्ग की उपासना में प्रेम है, इसलिए वह शृङ्गार-रसात्मक गिनी जा सकती है। पुत्र के प्रति पिता वा माता का स्नेह, सखा के प्रति सखा का स्नेह, प्रभु के प्रति दास का स्नेह, पति के प्रति स्त्री का स्नेह, इन पारिवारिक स्नेहों में से किसी एक के आदर्श से भगवान् के प्रति स्नेह अर्पित हो सकता है (श्रीमद्भागवत में इङ्गित किया गया है कि स्त्री-पुरुष के भीतर के मधुर भाव के अनुकरण से

भगवान् की अर्चना हो सकती है, क्योंकि स्त्री-पुरुष का परस्पर अनुराग अन्य अनुरागों से तीव्र है ।) भगवान् को पुरुष कल्पना करके, प्रकृति अर्थात् नारी के आवेग से उनके साथ मिलने की व्यग्रता ही आदर्श साधन-प्रणाली है ऐसा दिखाया गया है ।\* भागवत को गोपियाँ श्रीकृष्ण के अलौकिक रूप गुण और शक्ति देख कर मुग्ध हो गयी थीं । इस विस्मय के उच्छ्वास में आ कर उन्होंने उनके देवत्व का अनुभव किया था और उन्हें अपना प्रेम अर्पण किया था । ये यथार्थ भक्तिमती थीं, और अपने अतुलनीय प्रेम के कारण भगवान् का प्रेम-लाभ करने में समर्थ हुई थीं । फिर नारियाँ का स्वकीया और परकीया भेद है । जो नारी अपने पति के प्रति अनुरक्त न होकर अन्य पुरुष के प्रति अनुरक्त होती है, रसशास्त्र के अनुसार, वह परकीया, और जो अपने पति पर अनुरक्त रहती है वह स्वकीया नायिका कहलाती है । अपने पति के साथ मिलने के आवेग की अपेक्षा परकीया नारी का उपपति के साथ मिलित होने का आवेग कहीं अधिक है । इस तीव्र आवेग के द्वारा परिचालित होकर गोपियों ने श्रीकृष्ण अर्थात् भगवान् की, अराधना की थी । ऋग्वेद ६।३२।५ में यही भाव व्यक्त है—

“ योषाजारमिव प्रियम् । ”

अर्थात् ईश्वर के प्रति जीवात्मा के प्रेम का आवेग, उपपति के प्रति परकीया नारी के प्रेम के आवेग की नाई तीव्र है । गोपियों का प्रेम परकीया-प्रेम था । इस से यह नहीं समझना चाहिए कि भागवत या सूरसागर में साधारण नरनारियों के

---

\*तुलना कीजिये—If the soul is to go on into higher spiritual blessedness, it must become woman ; yes, however manly thou mayst be among men.—Cardinal Newman.

भीतर परकीया प्रेम का समर्थन किया गया है। सूरदास के काव्य में श्रीकृष्ण और राधा के भीतर नायक-नायिका के भाव की अपेक्षा उपास्य-उपासक का भाव अधिक स्पष्ट है।

प्रेमिक और प्रेमिका के एकत्र अवस्थान की अवस्था से उत्पन्न भाव का नाम है संयोग-शृङ्गार; उनके परस्पर विच्छिन्न हो के क्लेश अनुभव करने की अवस्था से उत्पन्न भाव का नाम है वियोग-शृङ्गार। सूरसागर के दशम स्कन्ध की वर्णना में पहले वात्सल्य रस का, पीछे संयोग-शृङ्गार का और अन्त में वियोग-शृङ्गार का भाव वर्णित हुआ है। बीच-बीच में शान्त रस का अवलम्बन कर सूरदास ने अपनी प्रगाढ़ भक्ति का परिचय दिया है। उनकी वियोग की कवितायें करुण-रसाश्रित हैं। दानवीला तथा भ्रमर-गीत की अनेक कवितायें हास्य-रसाश्रित हैं। शृङ्गार रस उपेक्षणीय वा घृण्य नहीं। भरत मुनि ने अपने नाट्य शास्त्र में कहा है—“यत्किञ्चित् लोके मेध्यं सुन्दरं तत् सर्वं शृङ्गार-रसेनोपमीयते।” मनुष्य समाज में जो कुछ पवित्र तथा सुन्दर गिने जाते हैं वे सब शृङ्गार रस को सहायता से वर्णित होते हैं।

सूरदास ने वात्सल्य, शृङ्गार तथा शान्त रसों के वर्णन में अपनी शक्ति दिखायी है। उन्होंने वात्सल्य तथा मधुर रसों की आलेख्यावली इतनी सूक्ष्मता तथा निपुणता से चित्रित की है कि उन्हें देख कर हम विस्मय से भर जाते हैं और माधुर्य का आस्वादन कर आकण्ठ परितृप्त होते हैं। सूक्ष्मदर्शिता और पद-विन्यास की कोमलता के कारण सूरदास का आसन तुलसीदास की अपेक्षा भी उच्च है। लालित्य, कोमलता तथा हृदय-हारित्व में विद्यापति का स्थान भी ऊँचा है। सूरदास दोनों ही से कहीं अधिक प्रसवशील तथा भक्तिमान् हैं। सूरदास के क्षेत्र की अपेक्षा तुलसीदास का क्षेत्र अधिक विस्तृत है। उन्होंने

मानव-जीवन के प्रायः सब सुख-दुखों का अवलम्बन कर सब रसों की वर्णना में साफल्य-लाभ किया है ।

सूरदास की एक भयानक रसात्मक कविता देखिये—

भहरात भहरात दावानल आयो ।  
 घेरि चहुँ ओर, करि शोर अन्धेर,  
 बन धरनि आकाश, चहुँ पास ढायो ।  
 बरत बन बाँस, थरहरत कुश काँस,  
 जरि उड़त है भाँस, अति प्रबल धायो ।  
 भपटि भपट लपट, पटकि फूल फूटत,  
 फटि चटकि लट, लटकि द्रुम नमायो ।  
 अति अग्नि भर, भार धुन्धार करि,  
 उचटि अङ्गार, भंभार ढायो ।  
 बरत बन पात, भहरात भहरात,  
 अररात तरु महा, धरनि गिरायो ।  
 भये बेहाल, सब ग्वाल ब्रज बाल,  
 तब सरन गोपाल, कहि कै पुकार्यो ।  
 नेक धीरज करौ, जियहि कोऊ जनि डरौ,  
 कहा यह सरे, लोचन मुदायो ।  
 मुठि भरि लियो, सब नाय मुखहि दियो,  
 सूर प्रभु पियो दावा, ब्रजजनन बचायो ।

---

# सूरसागर में वात्सल्य-रस और माखन-चोरी

## ( १ ) वात्सल्य-रस

अपत्य-स्नेह मानव-मात्र में विद्यमान है, और इसका आवेग अति प्रबल है । पुत्र और कन्या के रूप-गुण, हाव-भाव सब पिता-माताओं को प्रिय वस्तु है । अपत्याँ के विषय में कठोरता की शिथिलता पिता-माता को एक साधारण दुर्बलता है । पुत्र-वियोग पिता-माता को असहनीय है । लोग कहते हैं, पुत्र-शोक के समान शोक नहीं । संसार का अधिकांश काम पुत्र और कन्या के संबंध में है । इस अपत्य-स्नेह के नाना वैचित्र्य सूरदास ने ऐसे तन्न-तन्न करके और ऐसे मधुर रूप में दिखाए हैं कि वे अमर बने रहेंगे । यदि सूरदास श्रोकृष्ण की बाल्यलीला-मात्र लिखकर निवृत्त होते, तो भी वह एक श्रेष्ठ कवि स्वीकृत होते ।

हम सब कोई जानते हैं कि श्रोकृष्ण वसुदेव और देवकी के पुत्र थे, किंतु नंद-यशोदा को यह नहीं मालूम था । वे जानते थे कि श्रोकृष्ण उनके औरस पुत्र हैं, और औरस पुत्र के समान ही अति यत्न तथा लाड़ से उनका पालन किया था । यशोदा का पुत्र-स्नेह आदर्श पुत्र स्नेह के नाम से ख्यात है । सूरदास इस पुत्र-स्नेह का अति मनोहर चित्र हमारे सामने रख गए हैं ।

श्रोकृष्ण के जन्म के पहले ही से गोकुल ने एक अपूर्व श्रो धारण की थी । ब्रजमंडल उस समय प्रकृति का आनंद-कानन था—उन्मुक्त नोल आकाश, दिगंतव्यापी श्यामल शस्य-क्षेत्र, तृणाच्छादित विस्तोर्ण गोचारण भूमि एवं बीच-बीच में नाना फल-पुष्प-शोभित घनराजी\* । श्याम-सलिला यमुना का तीरवर्त्ती

---

\* दिशः प्रसेदुर्गगनं निर्मलोडुगणोदयम्,

मही मङ्गलभूयिष्ठपुरग्रामव्रजाकरा ।

प्रदेश प्राकृतिक शोभा, स्वास्थ्य, समृद्धि और सुख का आलय था। कालिदास की अलकापेक्षा वह किसी विषय में हीन न था। यह प्राकृतिक शोभा अब नहीं है। संभवतः सूरदास के समय इसका कुछ अवशेष रहा हो। सूरदास कदाचित् इस सुख-मय प्राचीन काल का कुछ परिमाण में आस्वादन कर सके हों। कदाचित् इसी कारण वह श्रीकृष्ण के वृन्दारण्य का इतना मधुर चित्र अंकित करने को समर्थ हुए थे।

इस सुखमय समय में दिव्य-कांति शिशु कृष्ण के आविर्भाव से गोकुल में एक अनिर्वचनीय आनन्द-स्वात प्रवाहित हुआ था। कृष्ण गोकुल के सब लोगों के नयन-मणि-स्वरूप हुए थे। इस आनन्द का विघरण देते हुए सूरदास ने श्रीकृष्ण के बाल्यचरित की वर्णना आरंभ की है—

जागी महरि, पुत्र-मुख देख्यो, आनन्द-तूर बजाई ;  
कंचन-कलस, हमे द्विज-पूजा, चंदन भवन लिपाई ।  
दिन दस ही ते वर्षे कुसुमनि, फूल गोकुलै छाई ;  
नंद कहै इच्छा सब पूजी, मनबांझित फल पाई ।  
आनन्द-भरे करत कौतूहल, उदित-मुदित नर-नारी ;  
निर्भय भए निसान बजावत, देत निसंके गारी ।  
नाचत महर, मुदित मन कीनो, ग्वाल बजावत तारी ;  
सूरदास प्रभु गोकुल प्रगटे, मथुरा कंस-प्रहारी ।  
एक गोपी कहती है—

आजु बधाई नंद के भाई ।  
सुंदर नंद महर के मंदर  
प्रगट्यो सूत सकल सुख कंदर ;

---

नद्यः प्रसन्नसलिला हृदा जलरुहश्रियः ;  
द्विजाजिकुलसन्नादस्तवका वनराजयः ।

( भागवत )

जसुमति-ढोटा ब्रज की सोभा  
देखि सखी कछु औरै लोभा ।

\* \* \*

दुख गयो, सुख आयो सबन्हको, भुषन चतुर्दस जानौ ।  
शिशु गोपाल के अपूर्व सौंदर्य का एक विवरण देखिए —  
लाला, हौं वारी तेरे मुख पर ।  
कुटिल अलक, मोहन मन बिहँसत,  
भ्रुकुटि बिकट नैननि पर ;  
द्वे-द्वे दमकि दँतुलियाँ बिहँसति,  
मनु सीपज घरु किय बारिज पर ।  
लघु-लघु सिर, लट घूँघरवारी  
रहीं लटक लौने लिलार पर ;  
नूतन चंद्र-रेख मधि राजति  
सुर-गुरु, सुक उदोत परस्पर ।  
लोचन लोल, कपोल ललित अति,  
नासिक को मुक्ता रद-झड़ पर ;  
सूर कहा नौझावरि करिए,  
अपने लाल ललित लर ऊपर ।

शिशुओं को छोटी छोटी प्रवेशाँ भी पिता-माता के मन में आनंद उत्पन्न करती हैं। गोपाल हाथों से खींच कर पैर का अँगूठा मुख में मेलते हैं, अकेले पड़े हुए स्वयं आनंद से खेल रहे हैं, उलट के झटो के बल सां रहे हैं, ये सब देख कर यशोदा हर्ष से गद्गद हो जाती हैं। वह सोचती है, गोपाल कब बड़े होंगे कब घुटुखन रेंगेंगे, कब उनके दूध के दो दाँत देखूँगी, कब उनकी तातली जाली सूँगी, कब वह 'मा' कहकर मुझे पुकारेंगे, कब मेरा अंचल पकड़ कर मुझ से झगड़ेंगे, कब अपने छोटे-छोटे हाथों से खायेंगे ।

चलत देखि यशुमति सुख पावै ।  
 ठुमुक-ठुमुक धरनीधर रंगत,  
 जननी देखि दिखावै ।  
 देहरी लौं चलि जात,  
 बहुरि फिर फिरि इतही को आवै ;  
 गिरि-गिरि परत, बनत नहिं नाँघत,  
 सुर-मुनि सोच करावै ।  
 कोटि ब्रह्मांड करत छिन भीतर,  
 हरत बिलंब न लावै ;  
 ताको लिए नंद की रानी,  
 नाना रूप खिलावै ।  
 तब यशुमति कर टेकि श्याम को  
 क्रम-क्रम कै उतरावै ;  
 सूरदास प्रभु देखि-देखि सुर-  
 नर - मुनि - बुद्धि भुलावै ।

गोपाल दूध पीना नहीं चाहते । माता उनको भुलाने के लिए कहती हैं—“कजली गाय का दूध पियो, तुम्हारी चोटी खूब बढ़ जायगी ।” यह सुनकर गोपाल ने दूध पिया । कुछ दिनों के बाद गोपाल माँ से कहते हैं—“मैया, मेरी चोटी तो न बढ़ी; कितने दिनों से मैं दूध पीता हूँ, किंतु मेरी चोटी ज्यों-की-त्यों कंटी रह गई है । तुमने तो कहा था कि नहाते-नहाते और कंधी करते-करते वह नागिन-सी हो जायगी ।”

सूरदास ने असंख्य पदों में माता और शिशु के प्रत्येक भाव की वर्णना की है । इस लेख में केवल दो-एक का उल्लेख संभव है । कृष्ण-लीला का वर्णन करते-करते सूरदास आत्मविस्मृत हो जाते हैं । ऐसा अनुमान होता है कि बालक के रूप में वह स्वयं ही क्रीड़ा कर रहे हैं और कभी माता हाँके बाल्यलीला

के आनन्द का उपभोग कर रहे हैं। इन वर्णनाश्रों में स्वाभाविकता पूर्ण रीति से विद्यमान है।

## ( २ ) माखन-चोरी

यशोदा-माता से कृष्ण कहते हैं—

मैया री मोहिं माखन भावै ।

मधु मेवा पकवान मिठाई, मोहिं नहीं रुचि आवै ॥

ब्रज जुवती इक पाछे ठाढ़ी, सुनति स्याम की बात ।

मन मन कहति कबहुँ मेरे घर, देखों माखन खात ॥

बैठे जाइ मथनियाँ के ढिग, मैं तब रही छिपानो ।

सूरदास प्रभु अन्तर्यामी, ग्वालि मनहिं की जानी ॥

तिसके बाद हरि ने माखन-चोरी आरम्भ की—

प्रथम करी हरि माखन चोरी ।

ग्वालिन मन इच्छा करि पूरन, आपु भजे हरि ब्रज की खोरी ॥

मन में इहै बिचार करत हरि, ब्रज घर घर सब जाउँ ।

गोकुल जनम लियो सुख कारन, सब को माखन खाउँ ॥

बाल रूप जसुमति मोहिं जानै, गोपिन मिलि सुख भोगूँ ।

सूरदास प्रभु कहत प्रेम सों घेरो रे ब्रज लोगू ॥

( भजे = भागे । खोरी = गली ) ।

एक दिन—

मथति ग्वालि हरि देखी जाइ ।

गये हुते माखन की चोरी, देखत कृपि रहे नयन लगाइ ।

डोलति तनु सिर अंचल उग्रौ, बैनो पीठि डोल इहि भाइ ।

बदन इन्दु पय पान करन को, मनहुँ उरग उठि लागत धाइ ।

निरखी स्याम अंग पुनि सोभा, भुज भरि शरि लीनो उरलाइ ।

चितै रही जुवती हरि मुख, नयन सैन दै चितहि चुराइ ।

तन मन धन गति मति बिसराई, सुख दीनो कछु माखन खाइ ।

सूरदास प्रभु रसिक सिरोमनि, तुम्हरी लीला को कहै गाइ ॥

( हुते = थे । इहि भाइ = यह अच्छी लगी । बदन इन्दु पथ = चन्द्र के समान मुख का दूध । उरग = बेनी रूपी सर्प । उरलाइ = छाती से लगा लिया । चितै = देखती । नयन सैन = कटाक्ष । )

गोपियाँ यशोदा के पास आकर अभियोग करती हैं । एक गोपी उनसे कहती है—

देखो माई या बालक की बात ।

बन उपबन सरिता सब मोहे, देखत स्यामल गात ।

मारग चलत अनीति करत हरि, हठि कै माखन खात ।

पीताम्बर लै सिरते ओढ़त, अंचल दै मुसुकात ।

तेरी सौं कहा कहाँ जसोदा, उरहन देत लजात ।

जब हरि आवत तेरे आगे, सकुचि तनक है जात ।

कौन कौन गुन कहाँ स्याम के, नेक न काहु उरात ।

सूर स्याम मुख निरखि जसोदा, कहा यह सब बात ॥

( सरिता = नदी । अनीति = अशिष्ट आचरण । उरहन = नालिश । कहा यह सब बात = क्या हैं ये सब बातें जो तुम्हारे विरुद्ध में कही जाती हैं ?

दूसरी एक गोपी का अभियोग यह है—

ग्वालिनी उरहन के मिस आई ।

नन्दनन्दन तन मन हरि लीनो,

बिन देखे कृन रह्यो न जाई ।

सुनहु महारि अपने सुत के गुन,

कहा कहाँ किहि भाँति बनाई ।

चोलो फारि हार गहि तोसो,

इन बातन कहौ कौन बड़ाई ॥

यह सुन के कन्हाई ने माँ से कहा—

भूठहिं मोहिं लगावत गारि ।

खेलत मैं मोहिं बोलि लियो है,

दोउ भुजभरि दीनी अँकवारि ।

मेरे कर अपने कुच धारति,  
 आपहि चोली फारि ।  
 माखन आप मोहिं खवायो,  
 मैं कब दीनो ढारि ।

( अँकवारि दीनौ = छाती से लगाई । )

यशोदा तब गोपियों से कहती हैं—

मैं तुम्हरे मन की सब जानी ।  
 आपु सबै इतराति है, दोषन  
 देत श्याम को आनी ।  
 मेरो स्याम कहँ दसहि बरस को  
 तुम्हरो जौबन मद उदमानी ।  
 लाज नहीं आवत इन लंगरिनि,  
 कैसो धौं कहि आवति बानी ।  
 आपुहि हार तोरि चोलीबन्द,  
 उर नखघात बनाइ निसानी ।  
 कहाँ कान्ह की तनुक अँगुरियाँ,  
 यह बार बार कहि पकितानी ।  
 देखहु जाइ और काहु को,  
 हरि पर सबै रहत मँडरानी ।  
 सूरदास प्रभु मेरे नान्हो,  
 तुम तरुनी डोलति अठिलानी ॥

( इतराती = ठसक दिखाती । उदमानी = उन्मत्ता । लंगरिनि = धृष्टा ।  
 मँडरानी = चारों ओर घूमती हुई । अठिलानी = हाव भाव देखाती । )

तब एक गोपी ने कहा—

हरि जानत है मंत्र जंत्र, सीखो कहुँ दोना ।  
 बन में तरुन कन्हाइ, घरहि आवत छोना ॥

एक दिवस किन देखहु, अन्तर रहौ छपाई ।

दस को है धौं बीस को, नयननि देखो जाई ॥

( टोना = जादू । छोना = शिशु । धौं = वा )

बार बार गोपाल के विरुद्ध में शिकायत आने पर यशोदा जी ने अतिशय क्रुद्ध होकर हाथ में रस्सी लिए हुए उन्हें बाँधने का संकल्प किया । कहने लगीं कि एक बार वह हाथ में आने से उसका क्या हाल करूँगी तुम सब देख लेना । इसी समय एक ग्लालिनी हाथ पकड़के गोपाल को वहाँ ले आयी । यशोदा ने उन्हें पीट कर उदूखल के साथ बाँधा । इससे गोपियाँ मन में भारी दुखी हुई । उन्होंने गोपाल को छोड़ देने का अनुरोध किया । तब यशोदा उन सभी को सम्बोधन कर बोलीं—

जाहु चली अपने अपने घर ।

तुमहीं सब मिलि ढीठ कराये,

अब आयी बन्धन छोरन बर ॥

मोहिं अपने बाबा को सौं है,

कान्है अब न पतियाऊँ ।

भवन जाहु अपने अपने सब,

लागत हौं मैं पाऊँ ॥

मोको जिनि बरजो जुषती कोउ,

देखौं हरि के ख्याल ।

सूर स्याम सौं कहति जसोदा,

बड़े नन्द के लाल ॥

( बर = बल से । बरजो = मना करो । देखौं हरि के ख्याल = मैं देखूँगी अब हरि क्या करे । बड़े नन्द के लाल = तुम नन्द के बड़े दुलारे हो गये हो । )

सब के चले जाने पर हरि ने अपना बन्धन मोचन करते हुए यमलार्जुन ( वृत्त ) उत्पाटित कर नलकुवेर को शाप मुक्त किया ।

किन्तु बन्धनावस्था में ही उन्हें सभी ने पाया । वृत्त के उत्पाटन के कड़ कड़ शब्द से चौंक के नन्दरानी ने वहाँ पहुँचके उनका बन्धन छुड़ाकर उन्हें कंठलग्न किया ।

कुछ षड़े होने पर गोपाल गोप-बालकों के साथ गोदोहन सीखने और गोचारण के लिए जाने लगे । माता-पुत्र का कथोप-कथन सुनिए—

आजु मैं गाय चरावन जैहों ।

बुंदावन के भाँति-भाँति फल अपने कर में खैहों ।

पेसी अबहि कहो जनि वारे, देखौ अपनी भाँति ;

तनक-तनक पाई चलि हौ कैसे, आवत है है राति ।

प्रात जात गैया लै चारन, घर आवत है है साँझ ;

तुम्हरो कमल-बदन कुम्हिलैहै, रंगत घामहि माँझ ।

तेरी सौ मोहि घामु न लागत, भूख नहीं कछु नेक ;

सूरदास प्रभु कह्यो न मानत, परे आपनी टेक ।

---

## सूरसागर में संयोग शृङ्गार

( क ) गोपियों का चित्त-विकार

श्रीकृष्ण बड़े होने लगे । गोपियाँ उनके रूप के मोह में अरुझने लगीं । श्रीकृष्ण प्रातःकाल गोचारण को जाते और साँझ को गोप-बालकों के साथ गायों को लेकर लौटते । गोचारण को जाने के लिए प्रातःकाल गोपाल जगाए जा रहे हैं—

जागिए गोपाल लाल, प्रगट भई हंस-माल,  
मिथ्यो सब अंधकाल, उठौ जननी मुख दिखाई ।  
मुकुलित भए कमल-जाल, गुंज करत भृङ्ग-माल,  
प्रफुलित बन पुहुप-डाल, कुमुदिनि कुम्हिलाई ।  
ठाढ़े सब सखा द्वार, कहत नंद के कुमार,  
देरत हैं बार - बार, आइए कन्हवाई ।  
गैयनि भई बड़ी बार, भरि-भरि पै थननि भार,  
बहुरागन करें पुकार, तुम बिन यदुराई ।

( कमल-जाल = कमल-समूह । भृङ्ग-माल = भौरों की श्रेणी । पुहुप = पुष्प । कुमुदिनी = कुई । बार = देरी । पै = पय, दूध । )

गोपाल को देख के व्रज-बालागण का कैसा चित्त-विकार हुआ था, देखिए—

( १ ) मेरे हियरे माँझ लगै मनमोहन लै गए मन चोरी ।  
अबहीं इहि मारग है निकसे, कृबि निरखत तृन तोरी ।

\*

\*

\*

\*

सूर स्याम चितवत गए मो तन, तन-मन लिए अजोरी ।

( हियरे=हृदय । तून बोरी=मन मोहित होता है । अजोरी=निःशेषित कर । )

( २ ) नटवर भेष काळे स्याम ।

पद-कमल, नख - ईदु - सोभा, ध्यान पूरन काम ।  
जानु - जंघ सुघटनि करभा, नाहिं रंभा तूल ;  
पीतपट काकनी मानहुँ जलज - केसर भूल ।  
कनक छुद्रावली पंगति, नाभि कटि के भीर ;  
मानहुँ हंस रसाल - पंगति रहे हैं हृद तीर ।  
भलक रोमावली-सोभा, ग्रीव मोतिन-हार ;  
मनहुँ गंगा बीच यमुना, चली मिलि त्रय धार ।  
बाहु दंड बिसाल तट दोउ, अंग चंदन-रेनु ;  
तीर तरु बनमाल की छवि, ब्रज-युवती सुख देनु ।  
चिवुक पर अधरनि दसन-द्युत, बिंब बीजु लगाइ ;  
नासिका सुक, नैन खंजन, कहत कवि सरमाइ ।  
खवन कुंडल कोटि रवि छवि भ्रुकुटि काम-कोदंड ;  
सूर प्रभु हैं नीप के तर, सिर धरे श्रीखंड ।

काळे=धारण किया है । ध्यान-पूरण काम=जो इनका ध्यान करता है, उसकी सब इच्छाएँ पूर्ण होती हैं । सुघटनि=सुगठित है । करभा नाहिं रंभा तूल=कमर रंभा के भी पराजित करती है । जलज केसर भूल=कमल के केसरो की भालर । छुद्रावली पंगति इत्यादि=मध्यस्थल में अवस्थित सोने की घुन्टिकावली देख के मालूम होता है मानों हंसों की सुन्दर पंक्ति ( नाभि- ) सरोवर के तीर पर बिचर रही है । भलक रोमावली सोभा इत्यादि=रोमावली के ऊपर कंठ की मोतियों की हार पहुँचने पर मालूम होता है मानों गंगा की धारा के भीतर यमुना की धारा प्रवेश करने के कारण तीन धाराएँ प्रवाहित हुई हैं । विशाल बाहुदंडद्वय मानों इस नदी के दो तीर हैं । बनमाली की शोभा है तीरस्थ तरराजि की शोभा के सदृश ।

चिबुक पर अधर तथा दन्तों की चमक देख के मालूम होता है मानो विवफल पर बिजली की छटा पड़ी है । श्रीखंड = मयूरपुच्छ ।

श्रीकृष्ण के प्रेम में गोपियाँ इतनी विह्वल हो गई थीं कि उनके मन में कृष्ण की चिन्ता छोड़कर और किसी विषय की भी चिन्ता न थी । किसी वस्तु का नाम बताते हुए वे ठीक नाम भूलकर ' कृष्ण ' या ' गोपाल ' बोल उठती थीं ।

ग्वालिनि प्रगट्यो पूरन नेहु ।

दधि-भाजन सिर पर धरे, कहति गुपालहिं लेहु ।  
 बन-बीथिन, पुर, गली, जहीं-तहीं हरि नाऊँ ;  
 समुभाई समुभक्त नहीं, सिख दै बिथके गाऊँ ।  
 कौन सुनै, काके स्रवन, काकी सुरति सकोच ;  
 कौन निडर डर आपको, को उत्तम, को पोच ।  
 प्रेम पिण बर बारुनी, बलकत कल न सँभार ;  
 पग डगमग जित-तित धरति, मुकुलित अकल लिलार ।  
 मंदिर में दीपक दिए, बाहर लखे न कोइ ;  
 तिन्हें प्रेम परगट भए, गुप्त कौन पर होइ ।  
 लज्जा तरल तरंगिनी, गुरुजन गहरी धार ;  
 दुहुँ कुल तरुनी मिली तिहि, तरत न लागी बार ।  
 बिधि भाजन ओढ़ो रच्यौ, सोभा-सिंधु अपार ;  
 उलटि मगन तामें भई, तब कौन निकसन हार ।  
 जैसे सरिता सिंधु में मिली जु कूल बिदारि ;  
 नाम मिट्यो, सलिलै भई, तब कौन निबरे वारि ।  
 चित आकर्ष्यो नंद-सुत मुरली मधुर बजाइ ;  
 जिहि लज्जा जग लज्जियो, सो लज्जा गइ लजाइ ।  
 प्रेम-मगन ग्वालिनि भई, सूर सुप्रभु के संग ;  
 नैन, बैन, मुख, नासिका, ज्यों केचुलि तजै भुजंग ।

बीथी=पथ । काकी सुरति सकोच=किसकी याद से उनके संकोच है ? कौन निडर डर आपके =जो निर्भय है, उसका डर कहाँ ? प्रेम पिण्ड बर बारुनी इत्यादि=प्रेम की तीव्र मदिरा पी के वे असंबद्ध प्रलाप बकने लगीं, बुद्धि ठीक न रख सकीं । मुकुलित अकल लिलार=उनका तरुण मस्तिष्क धैर्य धारण न कर सका । तिन्हें प्रेम प्रगट भये इत्यादि=गोपियों के अन्तर में जो प्रेम की रोशनी बरी है, वह गुप्त कैसे रहेगी ? लज्जा तरल तरंगिनी इत्यादि=उनके लज्जा हुई थी तरल नदी, और गुरुजन उस नदी की गंभीर धारा, किन्तु उनके दोनों कूल ( इह लोक तथा परलोक ) के कांडारी मिल गये हैं । इस कारण तीव्र धारा पार होने में उनके देरी न हुई । श्याम का सौन्दर्य था अपार सिन्धु । किन्तु उस समुद्र के पार में पहुँचने वाली गोपियों के विधाता ने अल्प शक्ति दी है । इस कारण वे उलट कर उस सागर में निमग्न हो गयीं । कौन है उनका उद्धारकर्ता ? जब नदी किनारा तोड़ कर सागर में मिल जाती है, तब उसका 'नदी' नाम नहीं रहता । जब समस्त जल हो जाता है, तब उस नदी को कौन पृथक् कर सकता है ? जिहि लज्जा इत्यादि =जो लज्जा जगत् को लजित करती है, वह खुद लजित होके भाग गयी । ग्वालिनी कृष्ण प्रेम में मग्न हो गयी हैं-नयन, बदन, मुख, नासिका तक उसमें डूब गये हैं, जैसे साँप केंचुली त्याग करते हुए स<sup>र्</sup> शरीर का अच्छादन त्याग देता है ।

इस पर श्रीकृष्ण की मधुर घंशी-ध्वनि ने गोप-बालाओं को एक बारगी पागल बना दिया—

जब ही बन मुरली स्रवन परी ।

चकृत भई गोप-कन्या सब, धाम-काम बिसरी ।

कुल-मरजाद, वेद की आज्ञा, नेकहु नहीं डरी ;

स्याम सिन्धु, सरिता ललनागन, जल की ढरनि ढरी ।

सुत-पति-नेह, भवन-जन-संका, लज्जा नहीं करी :

सूरदास प्रभु मन हरि लोन्हो, नागर नवल हरी

### ( ख ) गोपियों का चोर-हरण

अब ब्रजवालागण श्रीकृष्ण को पतिरूप में प्राप्त करने के निमित्त शिवजी की तथा सूर्यदेव की आराधना करने लगीं। व्रत धारण कर वे निष्ठा के साथ रहने लगीं। शीतातप न मानकर वे प्रत्येक ऋतु की उपयोगी तपस्या में प्रवृत्त हुईं। कठोर तपस्या के कारण उनके शरीर कृश हो गये। श्रीकृष्ण के लिए उनकी दारुण आकांक्षा जानकर भगवान् उनपर कृपापरवश हों, जब वे उलंग अवस्था में यमुना में अवगाहन कर रही थीं, उस समय जल के भीतर उनके प्रत्येक का पृष्ठदेश मार्जना कर देने लगे। इससे गोपवालिकागण समझ गयीं कि उनका व्रत पूर्ण हुआ है।

इसके बाद श्रीकृष्ण ने चोरहरण-लीला की। भगवान् के समक्ष नग्नता क्या है ?

### ( ग ) राधा-कृष्ण

विष्णु-पुराण, वायु-पुराण और श्रीमद्भागवत में राधा का उल्लेख नहीं है। राधा का नाम जयदेव के गीतगोविंद में और निंबार्क के 'दशश्लोको' नामक स्तोत्र में मिलता है। निंबार्क ने राधा को कृष्ण की मूल-प्रकृति कहा है \*। जयदेव और निंबार्क प्रायः एक ही समय में जीवित थे। निंबार्क का जन्म संवत् १२१६ में हुआ था। राधा का नाम हरिवंश के एक स्थान में मिलता है—“गोपियों के साथ क्रीड़ा करने के समय जिस समय दामोदर 'हा राधे, हा चंद्रमुखी' इत्यादि शब्दों से

\* अङ्गे तु वामे वृषभानुजां मुदा

विराजमानामनुरूपसौभगाम् ;

सखीसहस्रैः परिसेवितां सदा

'स्मरेम देवीं सकलेष्टकामदाम् ।

विरह प्रकट करते थे, तब वे वरांगनागण प्रहृष्ट होकर उनकी मुख-निःसृत घाणी सुनती थीं।” ‘गाथासप्तशती’ बहुत पुराना ग्रंथ है। उसमें राधा का उल्लेख है। आनन्दधर्धन के ‘ध्वन्यालोक’ के द्वितीय उद्योत में उद्धृत दो श्लोकों में राधा का नाम पाया जाता है। आनन्दधर्धन जयदेव के समसामयिक वा कुछ परवर्ती थे। पंचदश शताब्दी के अंतिम भाग में गुजरात में नरसिंह मेहता-नामक एक कवि ने राधा-कृष्ण-विषयक बहुत-सी कविताएँ रची थीं। उसके कुछ काल पहले वंग-देश में चंडीदास ने और मिथिला में विद्यापति ने राधा-कृष्ण की लीलाओं का अवलंबन कर अति सरस गीति-काव्य लिखे थे। इसके कुछ समय बाद राजपूताने में मीरा-बाई नामक भक्त स्त्री-कवि ने राजस्थानी-बोली में बालकृष्ण विषयक कुछ भक्ति-पूर्ण भजन लिखे थे। राधा-कृष्ण-विषयक धर्म-मत के प्रचार-कार्य में श्रीमद्वल्लभाचार्य शीर्ष-स्थानीय हैं। सूरदास वल्लभाचार्य के शिष्य थे। अतएव राधा का नाम और राधा-कृष्ण की लीला उनकी बहुत परिचित थी। पहले भगवान् की लीला-विषयक ग्रंथों में केवल गोपियाँ थीं, राधा नहीं थीं। पीछे गोपियों के सार-स्वरूप राधा की कल्पना की गई। (गोपियाँ प्रकृति का व्यष्टि-भाव हैं और राधा समष्टि भाव।

वृषभानु-नंदनी कुमारी राधा अपने पिता के घर रहती थीं। श्रीकृष्ण के साथ उनकी यमुना-पुलिन में अकस्मात् भेंट हो गई, और उसी मुहूर्त दोनों में प्रेम का संचार हुआ। प्रथम मिलन के समय राधा बाल्य तथा यौवन के संधि-स्थल में पहुँची थी। कृष्ण थे बालक। उनकी आयु की गणना से कुछ लाभ नहीं, क्योंकि वह सर्वशक्तिमान् थे। चार आँखों के मिलन के बाद नायक-नायिका के दैहिक मिलन तक का समय पूर्व-राग की अवस्था कही जाती है। बँगला वैष्णव-पदावलियों का एक प्रधान अंग है पूर्व-राग, और इसके वर्णन में बंगाली वैष्णव

कवियों ने बहुत चमत्कार दिखाया है। सूरसागर में नायक-  
नायिका के पूर्व-राग का वर्णन उतने विशद रूप में नहीं है।  
सूरदास वर्णित प्रथम मिलन का चित्र मधुर है। देखिए—

खेलन हरि निकसे ब्रज-खोरी ।  
कटि काढ़नी, पीतांबर ओढ़े,  
हाथ लिए भौरा चक-डोरी ।  
मोर-मुकुट, कुंडल स्रवनन घर,  
दसन-दमक दामिनि-कृबि थोरी ।  
गए स्याम रवि-तनया के तट,  
अंग लसति चंदन की खोरी ।  
औचक ही देखि तहाँ राधा,  
नयन बिसाल, भाल दिए रोरी ।  
नील बसन, फरिया कटि पहिरे,  
बैनी पीठि रुचिर भकभोरी ।  
संग लरिकिनी चलि इत आवति,  
दिन थोरी, अति कृबिजन गोरी ।  
सूर स्याम देखत ही रोभे,  
नैन-नैन मिलि परी ठगोरी ।

बूझत स्याम कौन तू गोरी ?  
कहाँ रहति काकी है बेटी, देखी नहीं कहूँ ब्रजखोरी ।  
काहे को हम ब्रजतन आवति, खेलति रहति अपनी पौरी ।  
सुनति रहति स्रवनन नँद ढोढा, करत रहत माखन दधि चोरी ।  
तुमरो कहा चोरि हम लैंहैं, खेलन चलौ संग मिलि जोरी ।  
सूरदास प्रभु रसिक सिरोमनि, बातन भुरइ राधिका भोरी ॥

राधा के पूर्व-राग का एक पद पढ़िए—

• नागरि मनहिं गई अरुझाइ ।

अति बिरह तनु भई ब्याकुल,  
 घर न नेक सुहाइ ।  
 स्याम सुंदर मदनमोहन,  
 मांहिनी - सी लाइ ।  
 चित्त चंचल कुवँरि राधा,  
 खान - पान भुलाइ ।  
 कबहुँ बिलपति, कबहुँ बिहँसति,  
 सकुचि बहुरि लजाइ ।  
 मात-पितु को त्रास मानति,  
 मन बिना भई बाइ ।  
 जननि सों दोहनी माँगति,  
 बेगि दे री माइ !  
 सूर प्रभु को खरि क मिलिहौं,  
 गए मांहि बुलाइ ।  
 एक और पदांश पर दृष्टि कीजिए—  
 सोचति चली कुँवरि घर हो ते ।  
 खरिका गइ समुहाइ ;  
 कब देखों वह मोहन मूरति,  
 जिन मन लियो चुराइ ।  
 लिये आवत हरि देखे,  
 तब पायो विश्राम ।  
 सूरदास प्रभु अन्तर्यामी,  
 कीन्हो पूरन काम ॥

ऐसे समय में—

गगन गरजि ग्रहराइ, जुरी घटा कारी ।  
 पवन भकभोर, चपला चमकि चहु ओर,  
 सुवन तन चितै नन्द डरत भारी ।

कहौ वृषभानु की, कुँवरि सौं योलि कै,  
 राधिका कान्ह घर लिये जा री ।  
 दोउ घर जाहु संग, नभ भयो स्याम रंग,  
 कुँवर गहो वृषभान बारी ।  
 गये बनघन ओर, नवल नन्द किसोर,  
 नवल राधा नये कुँज भारी ।  
 अंग पुलकित भये, मदन तिन तन जये,  
 सूर प्रभु स्याम स्यामा-बिहारी ॥\*

सूरसागर में गोपिकाओं के अनुराग के बहुत से अच्छे-अच्छे पद हैं, उनमें से ऊपर कुछ उद्धृत किए गए हैं। दो-एक और लीजिए—

( १ ) बिधातहिं चूक परी मैं जानी ।  
 आजु गोविंदहिं देखि-देखि हौं, इहै समुझि पङ्कितानी ।  
 रचि-पचि सोचि-सवाँरि सकल अंग, चतुर चतुराई ठानी ;  
 दृष्टि न दई रोम-रोमनि प्रति, इतनेहि कला नसानी ।  
 कहा करौं अतिसय द्वे नैना, उमँगि चलत मग पानी ;  
 सूर सुमेर समाइ कहाँ धौं, बुधि बासना पुरानी ।

( २ ) जो बिधिना अपबस करि पाऊँ ।  
 तौ सखि, कहो होइ कहु तेरो, अपनी साध पुराऊँ ।  
 लोचन रोम-रोम प्रति मागौं, पुनि-पुनि त्रास दिखाऊँ ;

---

\* जयदेव के गीत गोविन्द के मंगलाचरण-श्लोक की तुलना कीजिये—

मेधैमेंदुरमम्बरं वनभुवः श्यामास्तमालद्रुमै-  
 र्नक्तं भीरुरयं त्वमेव तदिमं राधे गृहं प्रापय ।  
 इत्थं नन्दनिदेशश्चलितयोः प्रत्यध्वकुञ्जद्रुमं-  
 राधामाधवयोर्जयन्ति यमुनाकूले रहः केलयः ॥

ब्रह्मवैवर्त पुराण में इस आशय का श्लोक है ।

इकटक रहैं, पलक नहिं लागैं, पद्धति नई चलाऊँ ।  
कहा करौं छवि-रासि स्याम घन, लोचन द्वे नहिं ठाऊँ ;  
येते पर ए निमिष सूर सुनि, यह दुख काहि सुनाऊँ ।

( ३ ) हरि मुख निरखत नैन भुलाने ।  
ये मधुकर रुचि पंकज-लोभी, ताहिते न उड़ाने ।  
कुंडल मकर कपोलन के ढिग, जनु रबि रैनि बिहाने ;  
भ्रुष सुंदर, नैननि-गति निरखत खंजन-मीन लजाने ।  
अरुन अधर ध्वज कोटि बज्र-द्युति, ससिगन रूप समाने ;  
कुंचित अलक सिलीमुख मानों, लै मकरंद निदाने ।  
तिलक ललाट, कंठ मुकुतावलि, भूषनमय, मनि साने ;  
सूरदास स्वामी अंग नागर, ते गुन जात न जाने ।

( ४ ) मेरो मन गोपाल हस्यो री ।  
चितवत ही उर पैठि नयन मन  
ना जानौं धौं कहा कस्यो री ।  
मात-पिता, पति, बंधु, सजन जन  
सखि, आँगन सब भवन भस्यो री ।  
लोक - बेद प्रतिहार पहरुआ  
तिनहू पै राख्यो न पस्यो री ।  
धर्म धीर कुल-कानि कुची करि  
तेहि तारौं दै दूरि धस्यो री ।  
पलक-कपाट कठिन उर अंतर  
इतेहु जतन कछु वै न सस्यो री ।  
बुधि-बिबेक-बल-सहित सच्यो पति  
सुध न अटल कबहूँ न टस्यो री ।  
लियो चुराइ चितै चित सजनी,  
सर सो मो तन जात जस्यो री ।

( ५ ) नैना नैननि माँझ समाने ।  
 टारे न टरत एक मिलि मधुकर, सुरस-मत्त-अरुभाने ।  
 मन-गति पंगु भई, सुधि बिसरी, प्रेम-पराग लुभाने ;  
 मिले परस्पर खंजन मानों, भ्रगरत निरखि लजाने ।  
 मन-बच-क्रम पल ओठन भाषत, छिनु युग बरस समाने ;  
 सूर स्याम के बस्य भए ये, जेहि बीतै सो जाने ।

श्रीराधा का रूप—

( १ ) नागरि गागरि लिए पनघट तें घरहि आवै ।  
 ग्रीवा डोलत, लोचन लोलत,  
 हरि के चितहि चुरावै ।  
 ठठकति चलै, मटकि मुँह मोरे,  
 बंकट भौंह चलावै ।  
 मनहुँ काम-सैना अंग-सोभा,  
 अंचल - ध्वज फहरावै ।  
 गति गयंद, कुच कुंभ, किंकिनी  
 मनहुँ घंट भहनावै ।  
 मोतिन-हार जलाजल मानों,  
 खुभी दंत झलकावै ।  
 मानहुँ चंद कहावत-मुँह पर,  
 अंकुस - बेसरि लावै ।  
 रोमावली सूँड़ि तिरनि लों,  
 नाभि सरोवर आवै ।  
 पग जेहरि जंजीरनि जकसो,  
 यह उपमा कछु पावै ।  
 घट-घट झलकि कपोलनि किनुका  
 मानों मदहि चुषावै ।

बेनी डोलति दुहुँ नितंब पर,  
मानहुँ पंख हलावै ।

गज सिरदार सूर को स्वामी,  
देखि-देखि सुख पावै ।

( २ ) राधे, तेरो बदन विराजत नीको ।  
जबतू इत-उत बंक बिलोकति,  
होत निसापति फीको ।

भ्रुकुटी-धनुष, नयन-सर साधे,  
सिर केसरि को टीको ।

मनु घूँघट-पट में दुरि बैठो  
पारधि-पति रति ही को ।

गति में मत्त नाग ज्यों नागरि  
करे कहति हों लीको ।

सूरदास प्रभु विविध भाँति करि  
रिक्तयो श्रीहरि पीको ।

राधा ने किस तीव्रता से अपने प्रेम को व्यक्त किया है ।  
देखिए—

आजु के दिन को सखी, अति नहीं जो  
लाख लोचन अंग-अंग होते ;

पूरति साध, मेरे हृदय माँझ  
देखत सबै छवि, स्याम को ते ।

चित्त लोभी, नैन - द्वार अति ही  
सूक्ष्म, कहाँ वह सिंधुछवि है अगाधा ;

रोम जितने अंग, नैन होते संग,  
रूप लेती निदरि कहति राधा ।

खषन सुनि-सुनि दहै, रूप कैसे लहै,  
नैन कछु गहै, रसना न ताके ;

देखि कोउ रहै, कोऊ सुनि रहै,  
 जीभ बिन सो कहै, कहा नहिँ नैन जाके ।  
 अंग बिनु है सबै, नहीं एकौ कबै,  
 सुनत-देखत जबै, कहत तोरे ;  
 कहैं रसना, सुनत स्रवन, देखत नैन,  
 सूर सब भेद गुनि, मनहिँ तोरे ।

( ग ) दान-लीला

श्रीकृष्ण के नाना अलौकिक कार्य देख के गोकुल-वासियों को विश्वास हो गया था कि वह भगवान् के अवतार हैं । सब कोई उनके रूप तथा गुणों के कारण मोहित हो गए थे, विशेष कर ब्रज-युवतीगण । उनमें से प्रत्येक उनके प्रति आसक्त हो गई थी, किंतु अपना-अपना मनोभाव किसी को जानने न देती थी । श्रीकृष्ण ने उनकी साध पूर्ण करने की इच्छा की । उनकी और भी इच्छा थी कि वे परस्पर के भीतर अपना-अपना भाव गुप्त न रखें । भक्तों के भीतर भाव-गोपन अविधेय है । भाव-विनिमय के द्वारा भक्ति की वृद्धि होती है । आश्चर्य का विषय यह था कि परस्पर के भीतर लेश-मात्र ईर्ष्या न थी ।

गोपियाँ नित्य गोकुल से मथुरा को दूध, दही, माखन, घी बेचने को जाती थीं । एक दिन की बात है—

दधि बेचन चली ब्रज-नारी ।  
 सीस धरि-धरि माट-मटुकी, बड़ी सोभा भारी ।  
 निकसि ब्रज के गई गोड़े, हरष भई सुकुमारी ;  
 चलीं गावति कृष्ण के गुन, हृदय ध्यान बिचारी ।  
 सबन के मन जो मिले हरि, कोई न कहति उचारी ;  
 सूर प्रभु घट-घट के व्यापी, जानि लई बनवारी ।

अब क्या हुआ ?

ग्वारिन तब देखे नँद-नंदन ।

मोर-मुकुट, पीतांबर काळे, खौर किए तनु चंदन ।  
तब यह कह्यो कहाँ अब जेहौ, आगे कुँवर कन्हाई ;  
यह सुनि मन आनंद बढ़ायो, मुख कहैं बात डराई ।  
कोउ-कोउ कहति, चलौरी जाई, कोउ कहै फिरि घर जाई ;  
कोउ-कोउ कहति, कहा करिहैं हरि, उनको कहाँ पराई ।  
कोउ-कोउ कहति कालि हो हमको लूटि लई नँदलाल ;  
सूर स्याम के ऐसे गुन हैं, घरहि फिरो ब्रजबाल ।

श्रीकृष्ण ने कहा—“ तुम नित्य दूध, दही इत्यादि बेचती हो, किंतु राजा का दान ( शुल्क ) नहीं देती ? अतएव तुम्हें दान देना होगा । मेरे ऊपर दान-संग्रह का भार है । दान दिए बिना तुम यहाँ से जा न सकोगी । ” कृष्ण और गोपियों के उत्तर-प्रत्युत्तर अति सरस हैं । गोपियों ने कहा—

गिरिवर धरे आपने घर को ।

ताहि के बल तुम दान लेत हौ, रोकि रहत हौ हमको ।  
अपने हो मुख बड़े कहावत, हमहुँ जानति तुमको ;  
यह जानति पुनि गाय चराधत, नितप्रति जात हो बन को ।  
मोर-मुकुट, मुरली, पीतांबर, देखे आभूषन बन को ;  
सूरदास कांधे कमरिहु जानति, हाथ लकुट कंचन को ।

श्रीकृष्ण बोले—

मोसों बात सुनहु ब्रज-नारी !

एक उपाख्यान चलत त्रिभुवन में, तुम सों आज उघारी ।  
कबहुँ बालक मुँह न दीजिए, मुँह न दीजिए नारी ;  
जोइ मन करै, सोइ करि डारै, मूड़ चढ़त हैं भारी ।  
बात कहत अठिलात जाति सब, हँसत देति कर तारी ;  
सूर कहा ये हमको जानै, छाछहि बेचनहारी ।

गोपियों ने उत्तर दिया—

यह जानति तुम नंद-महर-सुत ।  
 घेनु दुहत तुमको हम देखति, जात खरिकाह उत ।  
 चोरी करत रहौ पुनि जानति, घर-घर हँढ़त भाँड़े ;  
 मारग रोकि भए अब दानी, वै ढंग कब तें छाँड़े ।  
 और सुनहु जसुमति जब बाँधे, तब हम कियो सहाइ ;  
 सूरदास प्रभु यह जानति हम, तुम ब्रज रहत कन्हाइ ।  
 तब श्रीकृष्ण भगवान् अपना स्वरूप यों प्रकट करते हैं—

को पिता, को माता हमारी ?  
 कब जनमत हमको तुम देख्यो ,  
 हँसी लगत सुनि बात तुम्हारी ।  
 कब माखन चोरी करि खायो ,  
 कब बाँधे महतारी ?  
 दुहत कौन की गैया चारत ,  
 बात कही यह भारी ।  
 तुम जानति मोहिं नंद-दुटोना ,  
 नंद कहाँ ते आए ;  
 मैं पूरन अबिगति अबिनासी ,  
 माया सबनि भुलाए ।  
 यह सुनि ग्वालिनी सबै मुसकानी ,  
 ऐसेउ गुन हौ जानत ।  
 सूर स्याम जो निदसो सबहो ,  
 मात-पिता नहि मानत ।  
 तब श्रीकृष्ण बोले—

भक्त-हेतु अवतार धर्यो ।  
 कर्म-धर्म के बस में नाहीं ,  
 जोग-जग्य मन में न कर्यो ।

दीन-गुहारि सुनों छवननि भरि,  
 गर्भ-वचन सुनि हृदय जरीं ।  
 भाव-अधीन रहों सब ही के,  
 और न काहू नेक डरीं ।  
 ब्रह्म कोटि आदि लौ व्यापक,  
 सबको सुख दै, दुःखहि हरीं ।  
 सूर स्याम तब कही प्रगट ही,  
 जहाँ भाव, तँह ते न डरीं ।

तब गोपी-गोपाल के बीच में कुछ रस की बातें छिड़ीं । दो  
 उपभोग्य पद यहाँ उद्धृत किए जाते हैं ।

गोपाल की उक्ति—

( १ ) प्रगट करौ, सब तुमहि बतावैं ।  
 चिकुर चमर घूँघट हैं बरबर, भ्रुव सारंग दिखावैं ।  
 बान कटाच्छ, नयन खंजन-मृग, नासा सुक उपमाऊँ ;  
 तरिवन चक्र अधर बिद्रुम क्वि, दसन वज्रकन ठाऊँ ।  
 ग्रीव कपोत, कोकिला बानी, कुचघट कनक सभाउ ;  
 जोवन मदरस अमृत भरे हैं, रूप-रंग झलकाउ ।  
 अंग सुगंध, बसन पाटंबर, गनि-गनि तुमहि सुनाऊँ ;  
 कटि केहरि, गयंद-गति-सोभा, हंस सहित इकताऊँ ।  
 फेर किए कैसे निबहत है, घरहि गए कहा पाऊँ ;  
 सुनहु सूर बनिज तुम्हारे, फिरि-फिरि तुमहि मनाऊँ ।

( २ ) मो सों कहा दुरावति नारि !  
 नैन-सैन दै चितहि चुरावति,  
 इहै मंत्र सिर डारि ।  
 भौंह धनुष, अंजन गुन,  
 बान कटाच्छनि डारति मारि ।

तरिबन स्रवन फाँसि गर डारति,  
 कैसेहुँ नहीं सकत निरवारि ।  
 पीन उरोज, मुख नैन चखावति,  
 यह विष-मोदक जाति न भारि ।  
 घालत छुरी प्रेम की बानी,  
 सूरदास के सकै सँभारि ?

यह सुन के ब्रज-गोपियों की कैसी दशा हुई, सुनिए—

ब्रज-जुघती सुन मगन भई ।  
 यह बानी सुनि नंद-सुवन मुख ,  
 मन ब्याकुल, तन सुधिहु गई ।  
 को हम, कहाँ रहति, कहाँ आई ,  
 जुघतिन के यह सोच टसो ;  
 लागी काम नृपति की साँटी ,  
 जोबन रूपहि आनि असो ।  
 तृषित भई तरुनी अनंग डर ,  
 सकुचि रूप जोबनहिं दियो ;  
 सूर स्याम अब सरन तुम्हारे ,  
 हृदय सबनि यह ध्यान कियो ।

इस पर—

अंतरयामी जान लई ।  
 मन में मिले सबनि सुख दीन्हों ,  
 तब तनु की कछु सुरति भई ।  
 जब जान्यो बन में हम ठाढ़ी ,  
 तनु निरख्यो, मन सकुचि गई ।  
 कहति परस्पर आपस में सब ,  
 कहाँ रही हम काहि रई ।

स्याम बिना यह चरित करै को ,  
 यह कहिकै तनु सौंप दई ।  
 सूरदास प्रभु अंतरयामी  
 गुमहि जोबन दान लई ।

गोपियों ने कहा—

नंदकुमार, कहा यह कीन्हो ?  
 बूझति तुमहि कहौ धौं हमसों ,  
 दान लियो कि मन हरि लीन्हो ।  
 कछू दुराव नहीं हम राख्यो ;  
 निकट तुम्हारे आई ;  
 येते पर तुमहीं अब जानौ ,  
 करनी भली बुराई ।  
 जो जासों अंतर नहिं राखै ,  
 सो क्यों अंतर राखै ;  
 सूर स्याम तुम अंतरयामी ,  
 बेद उपनिषद यह भाखै ।

श्रीकृष्ण बोले—

सुनहु बात जुवती, इक मेरी ॥  
 तुमते दूरि होत नहिं कतहुँ, तुम राखो मोहिं घेरी ॥  
 तुम कारण बैकुंठ तजत हौं, जनम लेत ब्रज आई ॥  
 बृंदावन राधा संग गोपी, यह नहिं बिससो जाई ॥  
 तुम अंतर-अंतर कहा भाषति, एक प्रान द्वे देह ॥  
 क्यों राधा ब्रज बसे बिसारयो, सुमिरि पुरातन नेह ॥  
 अब घर जाहु दान मैं पायो, लेखो कियो न जाइ ॥  
 सूर स्याम हँसि-हँसि जुषतिन सों; ऐसी कहत बनाइ ॥

गोपियों की उक्ति—

घर तनु मनहिं बिना नहिं जात ।  
 आपु हँसि-हँसि कहत हौ जू चतुराई की बात ।  
 तनहि पर है मनहि राजा, जोइ करे सो होइ ;  
 कहो घर हम जाहिं कैसे, मन धर्यो तुम गोइ ।  
 नयन, स्रवन, विचार, सुधि, बुधि रहे मनहि भुलाइ ;  
 जाहि अब ही तनहि लै घर, परान नाहिन पाइ ।  
 प्रीति करि दुविधा करी कत, तुमहि जानौ नाथ ,  
 सूर के प्रभु दीजिए मनहिं, जाँइ घर लै साथ ।  
 तब श्रीकृष्ण ने कहा—

मन भीतर है बास हमारो ।  
 हमको लै करि तुमहि कृपायो ,  
 कहा कहति यह दोष तुम्हारो ।  
 अजहु कहौ रहैं अनतहि,  
 तुम अपनो मन लेहु ;  
 अब पकितानी लोक-लाज डर ,  
 हमहि छाड़ि तैं देहु ।  
 घटती होइ जाहिते अपनी ,  
 ताको कीजै त्याग ;  
 धोके कियो बास मन भीतर ,  
 अब समुझे भइ जाग ।  
 मन दीन्हों मोको तब लीन्हों ,  
 मन लैहो मैं जाउँ ;  
 सूर स्याम पेसी जनि कहिए ;  
 हम यह कही सुभाउ ।

तिस पर गोपांगनागण कहती हैं—

तुमहि बिना मन धृक, अरु धृक घर ।  
 तुमहि बिना धृक-धृक माता-पितु ,  
 धृक कुल कानि लाज, डर ।  
 धृक सुत-पति, धृक जीवन जग को ,  
 धृक तुम बिनु संसार ;  
 धृक सो दिवस, पहर, घटिका, पल ,  
 धृक धृक कहि बिनु नंदकुमार ।  
 धृक-धृक श्रवन कथा बिनु हरि के ,  
 धृक लोचन बिनु रूप ;  
 सूरदास प्रभु तुम बिन घर जो ,  
 बन भीतर के कूप ।

ब्रजांगनाओं की उक्तियों में असाधारण ईश्वर प्रेम का परिचय मिलता है । वे यथार्थ भक्तिमती थीं । श्रीकृष्ण और गोपियों के भीतर नायक-नायिका का भाव उस परिमाण में नहीं पाया जाता, जिस परिमाण में भक्त-भगवान् के संबंध का भाव ।

राधा और गोपियों का कृष्ण-प्रेम

इस प्रकार राधा तथा गोपियाँ श्रीकृष्ण का ध्यान करती और उनके प्रेम में मग्न रहती थीं । एक गोपी की उक्ति सुनिए—

( १ ) ब्रज को खोरी ठाढ़ो साँवरो ढोठौना ,  
 तब हौं मोही री मोही री ।  
 जब तैं मैं देखे स्यामसुंदर री, चलि न सकत ,  
 पग दई है काम नृप द्रोही री ।  
 ( २ ) आँखिन में बसै, जियरे में बसै ,  
 हियरे में बसत निसि-दिन प्यारो ।

मन में बसै, तन में बसै, रसना में बसै ,  
 अंग - अंग में बसत नंदघारो ।  
 सुधि में बसै, बुधिहु में बसै ,  
 उरजन में बसत पिय प्रेम - दुलारो ।  
 सूर स्याम बनहू में बसत ,  
 संग ज्यों जल - रंग न होत न्यारो ।

### राधा की उत्कंठा

कृष्ण के विरह से राधा अत्यंत व्याकुल रहती थी, कृष्ण को चारो ओर खोजती फिरती थी—

स्याम-बिरह बन-माँझ हेरानी ।

संगी गए संग सब तजिकै, आपु भई देवानी ।

एक सखी उनकी भेंट के लिए आई। देखा, वह अति व्याकुल हैं—उनका ज्ञान-चैतन्य लुप्तप्राय है। राधा का हाथ पकड़कर उसने पूछा—“तुझे क्या हो गया है? तू इतनी बेसुध क्यों हो गई है? तू मुझे खोलकर बता। क्या श्याम ने तुझे बेकल कर दिया है?” श्याम का नाम सुनते ही वह चकित हुई, और “श्याम, क्या तुम आए हो?” यह कहकर सखी के कंठ-लग्न हुई। कहा—“श्याम, तुम मुझे छोड़ गए हो, इस बार तुम मुझे क्षमा करो। बारबार मेरी भिन्ना है कि तुम अपने चरणों में मुझे स्थान देना।” तब अपना भ्रम समझ गई, और कहा—“सखी, तेरे निकट अब गोपन करना क्या है? मैं श्याम के चरणों में बिक गई हूँ। श्याम ने मुझे त्याग किया है, इस कारण मैं पागल हो गई हूँ। तुम सब मिलकर इसका कुछ उपाय करो। श्याम के साथ मुझे मिलाओ।”

उसने और अन्यान्य सखियों ने राधा के प्रति सहानुभूति प्रकाश की और सबों ने अपनी-अपनी दशा भी व्यक्त की।

राधा की एक प्रिय सखी ललिता कृष्ण को लाने चली, और कृष्ण के साथ भेंट करके कहा—

पद्मिनी सारंग एक मभारि ।  
 आपुहि सारंग नाम कहावैं, सारंग बरनी बारि ।  
 तामे एक कृवीलो सारंग, अर्ध सारंग उनहारि ;  
 अर्ध सारंग परि सकलई, अर्ध सारंग विचारि ।  
 तामहि सारंग-सुत संभित है, ठाढ़ी सारंग भारि ;  
 सूरदास प्रभु तुमहूँ सारंग, बनी कृवीली नारि ।

यह सूरदास का एक द्वष्टिकृत पद है। बिना टीका की सहायता के इन पदों का अर्थ करना कठिन है। सरदार कवि-कृत टीका के सिवा दूसरी कोई टीका नहीं मिलती। ऐसा प्रसिद्ध है कि सूरदास स्वयं इन पदों को टीका रख गए थे। कदाचित् सरदार कवि ने सूरदास की टीका के आधार पर अपनी टीका बनाई थी। उनकी टीका से भी ठीक-ठीक अर्थ समझना कठिन होता। टीकाकार ने भी ठीक समझा था या नहीं, इस बात का संदेह है।

ऊपर की कविता का भाव यह है—राधा नाम की एक गौरांगी बाला है। वह कमला नाम से भी उक्त होती हैं। उनकी भ्रू अर्ध-चंद्राकार है और उनका मुख पूर्णचंद्र के सदृश है। वह हारिणी-नयना और सब शोभाओं की राशि हैं। हे श्याम, तुम कंदर्प के सदृश सुंदर हो और राधा भी सुंदरी नारी हैं। अतएव दोनों मिलो।

‘सारंग’ शब्द सूरदास का बहुत प्यारा है। उन्होंने नाना अर्थों में इस शब्द का प्रयोग किया है। प्रस्तुत पद का पहला सारंग शब्द धाराधार (मेघ) के अर्थ में व्यवहार किया गया है। धाराधार शब्द की ‘भभारी’ (मध्य के दो अक्षर) क्या

हैं ?—राधा ? वह पद्मिनी राधा 'सारंग-वरनी' ( शुभ्रवर्णा ) बाला हैं । वह स्वयं ही सारंग ( कमला ) के नाम से कही जाती, अर्थात् परिचित हैं । उस नारी में एक क्ववीला ( सुंदर ) सारंग ( धनुष ) है, जिसका आकार अर्धसारंग ( अर्ध-चंद्र ) के सदृश है । उस अर्ध-चंद्राकार भ्रू से संयुक्त एक 'सकलई' ( पूर्णचंद्र ) है, अर्थात् राधा का मुख चंद्र के सदृश शोभा-युक्त है । उसके भीतर एक सारंगसुत ( हरिण-शावक ) है, अर्थात् राधा के नयन हरिण-शावक के नयनों के सदृश हैं, मानों राधा सारंग ( शोभा ) का भार ( राजि ) बनकर विराजित हैं । हे श्याम, तुम भी सारंग ( कंदर्प ) हो और राधा भी सुंदरी ललना हैं, अतएव दोनों का मिलन होना उचित है ।

सखी ने कृष्ण को लाकर राधा के साथ भिलाया । सूरदास ने मिलन के समय राधा के मनोभाव का किस प्रकार विश्लेषण किया है सुनिए—

राधेहि मिलेहु प्रतीत न आवति ।  
यद्यपि नाथ विधु-बदन विलांकति,  
दरसन को सुख पावति ।  
भरि-भरि लोचन रूप परमनिधि,  
उर में आनि दुरावति ;  
विरह-विकल मति दृष्टि दुहँ दिसि,  
सचि सरधा ज्यों धावति ।  
चितवत चकित रहति चित अंतर,  
नैन निमेष न लावति ;  
सपनो अहि कि सत्य ईस इह,  
बुद्धि बितर्क बनावति ।  
कबहुँक करत बिचार कौन हों,  
को हरि केहि यह भावति ;

सूर प्रेम की बात अटपटो,

मन तरंग उपजावति ।

कृष्ण के साथ मिलित होते हुए भी राधा को विश्वास नहीं होता—यद्यपि वह कृष्ण के चन्द्रमुख को देख रही हैं और दर्शन जनित सुख अनुभव कर रही हैं । नयन भर भर कर वह अमूल्य रत्न का ( श्रीकृष्ण का ) रूप हृदय में लाकर छिपा रखती हैं । विरह से उनकी बुद्धि बेकल हो जाने के कारण उनकी दृष्टि भ्रमर की नाई इधर उधर धावित होती है । कृष्ण को देखती तो हैं राधा किन्तु ( उनको खोने के डर से ) मन के भीतर व्याकुल रहने के कारण आँखों में पलक नहीं मारतीं । वह तर्क की सहायता से चिन्ता करती हैं कि यह स्वप्न है, या सत्य ही यह ईश्वर हैं ? फिर सोचती हैं, मैं कौन हूँ ? हरि कौन हैं ? क्यों इन्हें अन्ध लगता है ? फिर कुछ समय के बाद प्रेम को बैठिकानी बातें मन में मौज उत्पन्न करती हैं ।

संयोग शृङ्गार

## सूर-साहित्य में रास-लीला

गोपियों की मनस्कामना पूर्ण करने के अभिप्राय से श्रीकृष्ण ने रास-लीला की कल्पना की ( १ ) । शारद पूर्णिमा की स्निग्ध कौमुदी-युक्त निशा को इस लीला को उपयोगी समझ के उन्होंने उस समय अपनी बाँसुरी में स्वर-संयोग किया । जिस बंसी की ध्वनि से समग्र चराचर नियन्त्रित हो रहा है ( २ ) उसकी मोहिनी शक्ति से कौन निस्तार पा सकता है ? ब्रज-युवतियों का सामर्थ्य क्या था कि वह स्थिर रहें । बंसी का आह्वान सुनते ही जो जहाँ जिस अवस्था में थी, वह उसी अवस्था में ध्वनि के उत्पत्ति-स्थान के प्रति धावित हुई । ( ३ ) श्याम की बंसी की विशिष्टता यह है कि जिसको लक्ष्य कर वह ध्वनित होती है केवल उसी को उसकी ध्वनि सुनने में आती है, दूसरे को नहीं । प्रत्येक के निमित्त उसका निर्देश पृथक् होने पर भी उन सब निर्देशों के अनुसार विश्व की जो कार्य-परम्परा चल रही है, उसमें एक अपूर्व शृङ्खला तथा एकता विद्यमान है, और

---

( १ ) भगवानपिता रात्रीः शारदोत्फुल्लमल्लिकाः ।

वीक्ष्य रन्तुं मनश्चक्रे योगमायामुपश्रितः ॥ भग-१० । २६ । १

( २ ) ज्ञानदास की कविता स्मरण कीजिये—

मुरली कराओ उपदेश ।

ये रन्ध्रे ये ध्वनि उठे जानह विशेष । इत्यादि ।

( ३ ) Bowning की Pied Piper of Hamelin नामक कविता स्मरण कीजिये ।

उसके द्वारा एक आश्चर्य माधुर्य की सृष्टि होती है। ( १ ) रास-लीला में विश्व की विराट् कार्य-प्रणाली का मधुर आभास मिलता है—भगवान एक हो समय सर्वत्र उपस्थित रह कर कैसी सुन्दरता से विश्व की परिचालना कर रहे हैं ? गोपियों के नारीत्व को कुछ समय के लिए मन से विदूरित करके प्रकृति तथा पुरुष—जीवात्मा तथा परमात्मा—के घनिष्ठ सम्बन्ध को साँचिये। समझ में आवेगा कि कैसे मधुरभाव से भागवत्कारने इस व्यापार को हमारे सामने उपस्थित किया है। एक बार कल्पना की आँखों से देखिये कि शारद पूर्णिमाकी शुभ्र-ज्योत्सना के द्वारा विधौत विस्तृत यमुना-पुलिन पर षोडश सहस्र गोपाङ्गनाओं की प्रत्येक ( २ ) के साथ एक ही समय में संयुक्त हो के श्री भगवान नर्तनानन्द में उन्मत्त हैं ? क्या यह विराट नर्तन विश्व के भीतर प्रकृति तथा पुरुष के और भी विराट नर्तन का चित्र हमारे हृदय-पट पर अङ्कित करने को समर्थ नहीं है ?

शृङ्गार-रस की चरम परिणति है श्रीकृष्ण की रास-लीला, और इसी के प्रकाश के निमित्त था भगवान का नर-देह धारण। गोप-युवतियाँ अब स्थिर न रह सकीं—

सुनत मुरली अलि न धीर धरि कै ।  
चली पितै मात अपमान करि कै ।  
लरत निकसीं सबै तोरि फोरि कै ।  
भयी आतुर बदन दरस हरि कै ।  
जाहि जो भजै सो ताहि रातै ।

( १ ) Pythagoras और Addison का Music of the Spheres स्मरण कीजिये ।

( २ ) कृत्वा तावन्तमात्मानं यावतीर्गोपयोषितः ।

राम भगवांस्ताभिरात्मारामोपि लीलया ॥

केऊ कछु कहै सब निरस बातैं ।  
 ता बिन ताहि कछु नहीं भावै ।  
 और तो जोरि कोटिक दिखावै ।  
 प्रीति कथा वह प्रीतिहि जानै ।  
 और करि कोटि बातैं बखानै ।  
 ज्यों सलिल सिन्धु बिनु कहुं न जायी ।  
 सूर वैसी दसा इनहुं पायो ॥

श्याम की मुरली ध्वनि सुनने ही गोपी गण धैर्य-धारण न कर सकीं । अपने अपने पिता माता के द्वारा रोके जाने पर भी वह उनकी बातों का अनादर करती हुई चल खड़ी हुई । (१) लड़ती भगड़ती बाधा-विघ्नों को तोड़ती हुई सब कोई निकल पड़ीं । (२) वह हरि-दर्शन के लिये व्याकुल हुई थीं, कारण जो जिसको चाहता है, वह उसी का अनुरागी होता है । यदि कोई दूसरी कुछ बातें कहे, तो वह सब फीकी प्रतीत होती हैं—यदि कोई ( प्रतिकूल में ) करोड़ों युक्तियाँ दिखावे, तो भी अपने प्यारे के बिना उसको और कुछ अच्छा नहीं लगता । प्रेम की बातें प्रेमी ही समझ सकता है, और करोड़ों प्रकार से प्रेम की प्रशंसा करता है । जैसे समुद्र के अतिरिक्त दूसरी किसी ओर जल नहीं जाता, वही दशा इनको भी प्राप्त हुई थी ।

( १ ) ता वार्यमाणाः पतिभिः पितृभिर्भातृबन्धुभिः ।

गोविन्दापहृतात्मानो न न्यवर्तन्त मोहिताः ॥ भाग १०।३६।८

( २ ) चराडीदास का निम्नलिखित पद स्मरण कीजिये—

सहिते ना पारि मुरलीर ध्वनि पशिल हियार माफे ।

बरज तरणी हइल बाउरी हरिल कुलेर लाजे ॥

कृष्णमुखी हैया मुरली शुनिया सब बिसारित भेल ।

सकल रमणी धइल अमनि केह काहा नाहि माने ॥

सूरदास ने रास-लीला के विषय में अपना अभिमत इस प्रकार से व्यक्त किया है—

रास-रस रीति नहिं बरनि आवै । कहाँ वैसी बुद्धि, कहाँ वह मन, कहाँ यह चित्त जिय भ्रम भुलावै । जो कहौ कौन मानै निगम अगम, जो कृपा बिन नहीं यह रसहि पावै । भाव सों भजै, बिन भाव में एनहीं; भाव ही माहँ, भाव यह बसावै । यहै निज मन्त्र, यह ज्ञान यह ध्यान है, दरस दम्पति सार गाऊँ । यहै माग्यों बार बार प्रभु, सूर के नयन द्रौ रहे, नरदेह पाऊँ ।

रास-रस की रीति का वर्णन करना असाध्य है । मेरा वैसा मन वा वैसी बुद्धि कहाँ है ? यह मेरा चित्त मेरे जीवन को भ्रम के द्वारा प्रतारित कर रहा है । यदि वेद और तन्त्र को प्रमाण के रूप में उपस्थित करूँ तो कौन मेरा कहना मानेगा ? बिना हरि कृपा के रास-रस का आस्वादन नहीं किया जा सकता । भाव ( भक्ति ) के द्वारा ही इसे पाने की चेष्टा करनी चाहिये । भाव के भीतर ही यह भाव को प्रतिष्ठित करता है । यही अपना मन्त्र यही अपना ध्यान, यही अपना ज्ञान है । राधाकृष्ण का युगल दर्शन ही सब साधनाओं का सार है । हे प्रभु बारंबार मेरी यह भिक्षा है कि युगल-दर्शन के समर्थ दो नयनों के साथ मैं फिर नर-देह पाऊँ ।

गोपियों के आ पहुँचने पर श्रीकृष्ण ने उनसे कहा—

निसि काहे बन को उठि धाई ।

हाँसि हाँसि स्याम कहत हैं सुन्दरि, की तुम ब्रज मारगहि भुलाई । गयी रही दधि बेचन मथुरा, तहाँ आजु अबसरे लगाई । अति भ्रम भयो, विपिन क्यों आर्यों, मारग वह कहि सबनि बताई । जाहु जाहु घर, तुरत जुवति जन, खीभत गुरुजन, कहि डरवाई । की गोकुल ते गमन कियो तुम, इन बातन है नहीं भलाई ।

यह सुनि कै ब्रज बाम कहत भयीं, कहा करत गिरिधर चतुराई ।  
सूर नाम लै लै जन जन के, मुरली बारम्बार लगाई ॥

श्रीकृष्ण हँस हँसकर गोपाङ्गनाओं से कहने लगे, “हे सुन्दरी-गण, रात को उठकर बन को क्यों दौड़ आयीं? क्या तुम ब्रज का रास्ता भूल गयी हो? कदाचित्त तुम दही बेचने को मथुरा गयी थीं, और आज वहाँ से आने में तुम्हें देरी हो गयी है। तुम्हारी बड़ी भारी भूल हो गयी है, तुम बन के भीतर क्यों चली आयी हो, रास्ता तो वह है।” इतना कहकर वह उन्हें रास्ता दिखाने लगे। “हे युवतीगण, शीघ्र घर जाओ, तुम्हारे गुरुजन तुम से क्रुद्ध होंगे।” यह कहते हुए वह उन्हें डराने लगे। “यदि लोग जान लेंगे कि तुम गोकुल से चली गयी हो, यह सब बातें भी तो तुम्हारे लिए अच्छी नहीं हैं।” यह सुनकर ब्रज-नारीगण बोलीं, “प्रत्येक का नाम ले लेके तुमने बारम्बार मुरली बजाई है, अब यह क्या चतुराई करते हो, गिरिधारी?”

श्रीकृष्णचन्द्र ने कहा—

यह जिन कहौ घोष कुमारी ।  
हम चतुराई नहीं कीनहीं, तुम चतुर सब ग्वारी ॥  
कहाँ हम कहाँ तुम रहो ब्रज, कहाँ मुरली नाद ।  
करति हौ परिहास हम सों, तजौ यह रसवाद ॥  
बड़े की तुम बहूबेटी, नाम ले क्यों जाई ।  
एसे हो निसि दौरि आयीं, हमहिं दोस लगाई ॥  
भली यह तुम करी नाहीं, अजहुँ घर फिरि जाहु ।  
सूर प्रभु क्यों निडरि आयी, नहीं तुम्हारे नाहु ॥

ऐसा न कहो, हे ब्रज-कुमारीगण। मैंने चतुराई नहीं की, तुम सब ही चतुर हो। कहाँ मैं हूँ और कहाँ ब्रज में तुम रहती हो? तुम मेरे साथ हँसी करती हो। अब यह रस की बातें छोड़ो। तुम हो बड़े घरों की बहू-बेटी, भला तुम्हारे नाम भी

कभी लिये जा सकते हैं ? तुम स्वयं ही आज रात को दौड़ आयीं हो, अब मुझ पर दोष लगाती हो । तुमने यह अच्छा नहीं किया—अब भी घर लौट जाओ । इतना निर्भय हो के कैसे तुम यहाँ आयीं ? क्या तुम्हारे पति नहीं हैं ?

अब तुम कही हमारी मानो । ( १ )

बन में आइ रैन सुख देख्यो, इहै लह्यो सुख जानो ॥

अब तुम भवन जाहु पति पूजहु, परमेसर की नाई ।

सूर स्याम जुबतिन सों कहि कहि सब अपराध क्षमाई ॥

अब तुम मेरा कहना मानो । बन में आके तुमने इस सुन्दर रजनी की शोभा देखी, यही तुम्हारा लाभ है जानना । अब तुम अपने अपने घर जाओ और अपने अपने पति को ईश्वर जान कर उनकी सेवा करो । श्याम ने प्रत्येक युवती से कह कहकर, अपने अपने सब अपराध क्षमा कराये ।

श्याम उर प्रीति मुख कपट बानी । ( २ )

जुबती व्याकुल भयीं, धरनी सब गिरि गयीं,

आस गयी दूटि, नहिं भेद जानो ॥

श्याम के हृदय में हर्ष है किन्तु मुख में कपट वचन । युवती-गण व्याकुल होकर पृथ्वी पर गिर पड़ीं । उनकी आशा टूट गयी, किन्तु वह ( अब तक श्याम के ) अन्तर का भाव न जान सकीं ।

वह बोलीं—

निटुर वचन जिनि बोलहु श्याम ।

आस निरास करो जिनि हमरो, व्याकुल वचन कहति हैं वाम ॥

( १ ) रजन्येष्वा घोररूपा घोरसत्त्वनिषेविता ।

प्रतियात ब्रजं नेह स्थेयं स्त्रीभिः सुमध्यमाः ॥ भाग १० । २६ । १६

( २ ) इति विप्रियमाकर्ण्य गोप्यो गोविन्द भाषितम् ।

विषणा भग्नसङ्कल्पाश्चिन्तामापुर्दुस्तयाम् ॥ भाग १० । २६ । २८

अन्तर कपट दूरि करि डारौ, हम तन कृपा निहारौ ।  
कृपासिन्धु तुमको सब गावत, अपनो नाम सँभारौ ॥ (१)  
हमको सरन और नहिं सूझै, कोपै हम अब जाहिं । (२)  
सूरदास प्रभु निजदासिन को चूक कहा पछिताहिं ॥

ब्रजयुवतियों ने व्याकुल होकर कहा—

ऐसी निष्ठुर बातें न कहो, श्याम । हमें आशा में निराश न करो । हम पर कृपा-दृष्टि पूर्वक अन्तर को कपटता दूर करो । सब कोई तुम्हें कृपासिन्धु नाम से पुकारते हैं, अपने नाम का गौरव रक्षा करो । हमें दूसरा कोई आश्रय नहीं सूझता, किसके पास अब हम जायें ? हे प्रभु, आप को दासियों का अपराध ही क्या हुआ है कि हम पछितावें ?

तुम पावत हम घास न जाहिं ।  
कहा जाइ लैहैं ब्रज में, यह दरसन त्रिभुवन में नाहिं ॥  
तुमहुँते ब्रज हितू काउ नाहिं कांठि कहौ नहिं मानैं ।  
काके पित। मात हैं काके, काहु हम नहिं जानैं ॥  
काके पतिसुत मांह कोन को, घर हो कहा पठावत ।  
कैसे धर्म पाप है कैसे, आस निरास करावत ॥  
हम जानैं केवल तुम हो को, और वृथा संसार ।  
सूर स्याम निदुराई तजिये, तजिय बचन विनुसार ॥

- ( १ ) मैव विभोऽर्हति भवान् गदितुं नृशस  
सन्तज्य सर्वविपायैस्तव पादमूलम् ।  
प्राप्ता भजस्व दुखग्रह मा त्यजास्मान्  
देवो यथादि पुरुषोभजतो मुमुक्षून् ॥ भाग १० । २६ । ३१ ।
- ( २ ) ना ठेलह छले अबला पखले  
ये हय उचित तोर ।  
भाविष्य देखिनु प्राणनाथ बिने  
गति ये नाहिक मोर ॥ —चण्डीदास

तुम्हें पाया है, अब हम ब्रज को नहीं जायेंगी। वहाँ जाके हमें क्या मिलेगा ? तुम्हारे यह दर्शन तो त्रिभुवन में दूसरे किसी स्थान में नहीं मिल सकते। ब्रज में तुम से अधिक हितकारी हमारे लिए और कोई नहीं है। तुम यदि हमें करोड़ों प्रकार से समझाओ तो भी हम तुम्हारा कहना नहीं मानेंगी। कैसे पिता माता ? किसी को हम नहीं जानतीं। कैसा पति पुत्र का मोह ? किसका घर दुआर है कि हमें वहाँ भेजते हो ? धर्म कैसा है ? पाप भी कैसा है कि हमारा आशा-भङ्ग कर रहे हो ? हम केवल तुम्हीं को जानती हैं। तुम्हारे अतिरिक्त संसार के और सब पदार्थ व्यर्थ हैं। स्याम, निदुरता छोड़ो और अर्थहीन बातें न कहो।

आपुहि कही करौ पति सेवा, ता सेवा को हम आयीं।

सुनहु स्याम इहँई तनुत्यागै, हमरो घोस गयो नहिं जायी ॥

तुम ही ने हम से पति-सेवा करने का कहा है। उसी सेवा के लिए ही तो हम आयी हैं। श्याम, तुम सुनो, हम यहीं शरीर त्याग देंगी, तो भी हमसे ब्रज को लौटना नहीं बनेगा।

हम चाहति मृदु हंसनि माधुरी, जाते उपजे काम।

सूर स्याम अधरन रस सींचहु, जरति विरह सब बाम ॥

हम चाहती हैं तुम्हारे मृदु हास्य की माधुरी, जिससे अनुराग उत्पन्न हो। जितनी स्त्रियाँ सब विरह से जल रही हैं, तुम उन पर अधर-रस (बचनामृत) सिंचन करके उनके ताप को शीतल करो।

ब्रजाङ्गनाओं की कातर बातें सुनकर (१) और विरह की व्याकुलता देखकर श्रीकृष्ण को बड़ी बड़ी आँखें आँसु से भर गयीं। उनके सुन्दर मुख पर के आँसु की धारा का वर्णन कौन

( १ ) इति विक्लवित तासां श्रुत्वा योगीश्वरश्वरः ।

प्रहस्य सदय गोपीशत्मारामोऽप्यारीरमत् ॥ भाग १० । २६ । ४ ॥

कर सकता है ? मानों अमृत का हृद उकलता हुआ, प्रकट रूप में प्रेम दिखा रहा है—मानों चाँद के सदृश मुख पर दो सुन्दर चकोर निर्भय से बैठे हैं और चञ्चु भर भरकर मुख-चन्द्र का अमृत पान कर रहे हैं । उनके मुख पर मानों भ्रमरगण ( घुँघराले काले बाल ) आ गिरे हैं । श्रीकृष्ण गोपियों को बार बार हर्ष की बाणी कह रहे हैं, “ धन्य तुम ब्रजबालागण ” । उन्होंने कृपापूर्वक उनको निरीक्षण किया ।

फिर श्रीकृष्ण ने कहा, ( १ ) “ ब्रजाङ्गनागण, तुम धन्य हो, “तुम एकचित्त होके गुरुजनों तथा कुल-मर्यादा का निरादर करके और पतिपुत्र का स्नेह तृण के समान तोड़के मुझे अपना समझ रही हो । धन्य है तुम्हारे प्रेम की दृढ़ता, जिसके कारण तुम बिना मूल्य के मेरे हाथ बिक रही हो । तुमने जिस लिए मेरी भजना की है, उसका फल तुरन्त तुम्हें दूँगा । तुम दुःख न करो । तुम्हारे हर्ष का समय उपस्थित है । मैं रास को रचना कर तुम्हारे साथ विहार करूँगा । ” श्रीकृष्ण प्रत्येक ब्रज-सुन्दरी के मुख की ओर ताकते हुए हँसने लगे और वचनामृत वर्षण करने लगे । श्यामसुन्दर तथा राधा बीच में और गोप-रमणीगण चारों ओर खड़े हो गये ।

मानों माइ घर घर अन्तर दामिनी ( २ ) ।

घन दामिनि, दामिनिघन अन्तर, सोभित हरिव्रजभामिनी ॥

( १ ) न पारयेऽहं निरवद्यं संयुजां

स्वसाधुकृत्यं विबुधायुधापि वः ।

या मा भजन् दुर्जयगेहशृङ्खलाः ।

संवृश्च तद्वः प्रतियातु साधुना ॥ भाग १० । ३२ । २१ ।

( २ ) रासोत्सवः सम्प्रवृत्तो गोपीमण्डलमण्डितः ।

योगेश्वरेण कृष्णेन तासां मध्ये द्वयोर्द्वयोः । भाग १० । ३२ । ३३

जमुना पुलिन मल्लिका मनहर, सरद सुहाई जामिनी ।  
 सुन्दर ससि गुन-रूप-राग विधि, अङ्ग अङ्ग अभिरामिनी ॥  
 रचि सुरास, मिलि रसिक राइसों, मुदित भयीं ब्रजभामिनी ।  
 रूप निधान सुन्दर घन, आनन्द मन विस्रामिनी ।  
 खंजन मीन मराल हरन छवि, भरी भेद गजगामिनी ।  
 को गति गुनही सूर स्याम सँग, काम बिभोरो कामिनी ॥

मानों एक एक घर के अन्तर एक एक बिजली का प्रकाश है । एक टुकड़ा मेघ के बाद बिजली की एक लहर है, और एक बिजली की लहर के बाद एक टुकड़ा मेघ है । इस क्रम से श्रीकृष्ण तथा ब्रज-गोपीगण खड़े होकर सौन्दर्य को प्रकाशित करने लगे । मल्लिका के गन्ध से मन को मुग्ध करने वाले यमुना-तट पर मनोरम शरत्-काल की रात्रि में सुन्दर चन्द्र का उदय हुआ है, सुन्दर रूपगुण तथा स्वर-लहरी की माधुरी व्याप रही है और ब्रज-रमणी गण प्रत्येक अङ्ग से मन को मोह रही हैं । श्रीकृष्ण ने रास (नृत्यगीता की मंडली) का सुन्दर विन्यास किया है । उसमें रसिक-राज श्रीकृष्ण से मिलित होकर ब्रज-सुन्दरीगण पुलक से भरी जा रही हैं । रूप के आधार श्याम-सुन्दर-घन के साथ आनन्द के द्वारा मन को शान्ति देने वाली रमणीगण विराज रही हैं । खंजन, मीन तथा मराल की शोभा को हरने वाले श्रीकृष्ण ने हाथों के समान मन्दगति से चलने वाली सुन्दरीगण के बीच के शून्य स्थानों को पूर्ण किया है । श्याम की गति के साथ काम-विह्वला गोपियों की गति का वर्णन कौन कर सकता है ?

गति सुगन्ध नृत्यत ब्रज नारी ।

हाव भाव सैन नैन दै दै रिभ्रवति ब्रज नारी ॥  
 पग पग पटकि भुजनि लटकावति फंदा करनि अनूप ।  
 चंचल चलत भूमिये अंचल, अद्भुत हैं वह रूप ॥

दुरि निरखत अंगरूप परस्पर, दोउ मनहि मन रिभाषत ।  
 हँसि हँसि बदन वचन रस प्रगटत, स्वेद अंगजल भीजत ॥  
 वेणी कूटि लटें बगरानी, मुकुट लटकि लटकानो ।  
 फूल खसत सिर ते न्यारे, सुभग स्वातिसुत मानो ॥  
 गान करति नागरि रीझे, पिय लीन्ह अंकम लाइ ।  
 रसवस ह्वे लपटाइ रहे दाउ, सूर सखी बलिजाइ ॥  
 नागरी सब गुननि आगरि, मिलि चलति पिय संग ।  
 कबहुँ गावति कबहुँ नृत्यत, कबहुँ उघटत रंग ॥  
 मंडली गोपाल गोपी, अंग अंग अनुहारि ।  
 सूर प्रभु धनि नवल भामिनि, दामिनी क्वि डारि ॥

ब्रज-नारीगण नाच रही हैं। उनकी चाल से सुवास निकल रही है। वे हाव-भाव तथा नयन-कटाक्ष के द्वारा श्यामसुन्दर को आनन्दित कर रही हैं। वे ताल के साथ पैर फेंक रही हैं, हाथों को हिला रही हैं और सुन्दरता से कूद रही हैं। वे अंचल हिला कर क्षिप्र गति से चल रही हैं। उनका वह रूप विचित्र है। प्रत्येक युगल चोरी से परस्पर के शरीर की शोभा निहार रहा है और मन हो मन आनन्दित हो रहा है। उनके मुख हँस हँस कर वाक्यों का आनन्द प्रकट कर रहे हैं। पसीने से उनके अंग भोग रहे हैं। चोटी खुल जाने के कारण बाल बिखरे जा रहे हैं। सिर के मुकुट नीचे की ओर झुके जा रहे हैं और फूल, सुन्दर मुक्तादल की नाई खसक कर गिरे जा रहे हैं। सुन्दरीगण आनन्द से गा रही हैं। उनके प्यारे उनको अपने कोंड से लगा रहे हैं—रसवस दोनों आप उसमें लिपट जा रहे हैं। गुणों के आधार सुन्दरीगण प्यारे के साथ समता रखकर बढ़ रही हैं—कभी गान कर रही है, कभी नृत्य कर रही है और कभी उल्लास दिखा रही हैं। रास-मण्डली में गोपाल तथा गोपीगण में प्रत्येक

हर अंग की समता दिखा रहे हैं। श्रीकृष्ण तथा विद्युत्-कटा-युक्त नवीन सुन्दरीगण धन्य हैं।

### राधाकृष्ण का गन्धर्व-विवाह

इसके पश्चात् सूरदास ने इस रास-प्राङ्गण में श्रीकृष्ण के साथ राधा के गन्धर्व-विवाह का विस्तार-पूर्वक वर्णन किया है। श्रीकृष्ण मुरली-ध्वनि के द्वारा गोपियों को विवाह सभा में निमन्त्रण कर लाये और स्वयं वर के वेश में सज्जित हो आये। कुञ्ज में मंडप, और यमुना-पुलिन में वेदी रचित हुई है। वृन्दा विवाह-कार्य की व्यवस्था कर रही है। मंडप में मांगलिक आचार सम्पन्न हुआ और गोपियों ने वर तथा बधू के वस्त्रों के पल्लों में गाँठ जोड़ दी। चारों ओर बन-विहङ्ग फूलों से ढक गये। कोकिल तथा अन्यान्य बन-विहङ्गों ने माङ्गलिक सङ्गीत गाया। उस निर्मल ज्योत्स्ना में वृषभानु-नन्दिनी तथा वृन्दावन चन्द्र के युगल-रूप की क्या ही शोभा हुई !

इसके बाद रास-रङ्ग फिर आरम्भ हुआ—

गावत स्याम स्यामा रङ्ग ।

सुधर गति नागरि अलापति, सुर धरति पिय सङ्ग ॥

तान गावति कोकिला मना, नाद अलि मिलि देत ।

मोर सङ्ग चकोर डोलत, आप अपने हेत ॥

भामिनी अङ्ग जोन्ह मानो, जलद स्यामल गात ।

परस्पर दोउ करत क्रीड़ा, मनहि मनहि सिहात ॥

श्याम और श्यामा आनन्द से गा रहे हैं। नागरी राधा प्रिय के सुर के साथ सुर मिलाकर गीत आरम्भ करती हैं और सुन्दर गति-विशिष्ट तान लगा रही हैं, मानों कोकिला तान धरती हुई अलि के सुर के साथ सुर मिला रही है—मानों परस्पर के प्रेम में आवद्ध हो कर चकोरी मयूर के साथ साथ घूम रही है—मानों सुन्दरी के शरीर की ज्योत्स्ना काले मेघ की देह पर गिरी है।

दोनों मिलकर खेल रहे हैं और मन ही मन परस्पर की प्रशंसा कर रहे हैं ।

## राधा का गर्व

राधा के मन में गर्व हुआ कि वही श्रीकृष्ण की सबसे अधिक प्यारी हैं और उन्हीं के लिए इस रास-लीला का प्रबन्ध हुआ है । दर्पहारी भगवान राधा का ( भागवत में गोपियों का ) गर्व खर्ब करने के अभिप्राय से वन के भीतर उन्हें अकेली छोड़ के अन्तर्हित हुए । (१) कृष्ण के विरह से गोपियाँ व्याकुल हो उठीं । राधा की तो बात ही क्या थी ?—वह संज्ञाहीना होकर शुष्क लता की नाई एक वृक्षमूल पर पड़ी रहीं । बहुक्षण के बाद चेतना प्राप्त कर वह वन के भीतर श्याम को खोजने लगीं—

कहि धौरी बनवेलि कहूँ तैं, देखे हैं नंदनन्दन ।  
बूझहुँ धौं मालतो कहूँ तैं, पाये हैं तनुचन्दन ॥  
कहि धौं कुन्द कदम घट, चम्पकलता तमाल ।  
कहि धौं कमल कहाँ कमलापति, सुन्दर नयन बिसाल ॥ (२)  
स्याम स्याम कहि कहति फिरति यह, ध्वनि वृन्दावन जायो री ।  
गर्व जानि पिय अन्तर है रहे, सो मैं बृथा बढ़ायो री ॥  
अब बिन देखे कल न परत छिन, स्यामसुन्दर गायो री ।  
मृगमृगनि द्रुम वन सारस खग, काहू नहीं बतायो री ।

( १ ) तासां तत् सौभगमद वीक्ष्य मानंच केशवः ।

प्रशमाय प्रसादाय तत्रैवान्तरधीयत ॥ भाग—१० । २६ । ४८

( २ ) दृष्टो वः क्वचिदश्वत्थ-प्लक्ष-न्यग्रोध नो मनः ।

नन्दसूनुर्गतो हृत्वा प्रेमहासावलोकनैः ॥ भाग—१० । ३० । ५

क्वचित् कुरुवकाशोकनागपुत्रागचम्पकाः ।

रामानुजो मानिनीनांगतो दर्पहरस्मितः ॥ भाग—१० । ३० । ६

मुरली अधर सुधारस लै तरु, रहे जमुन के तीर ।

कहि तुलसी तुम सब जानति हौ, कहँ घन श्याम सरीर ॥ (१)

कहि धौँ मृगी मया करि हम सों, कहि धौँ मधुप मराल ।

सुरदास प्रभु के संगी हौ, कहाँ परम दयाल ॥

“ हे वनलता, क्या तुमने नन्दनन्दन को देखा है ? हे मालती तुमसे पूछती हूँ, क्या तुमने चन्दन-लिप्त-देह-विशिष्ट श्रीकृष्ण को पाया है ? हे कुन्द, हे कदम्ब, हे वकुल, हे चम्पक-लता, हे कमल, हे घट, तुम कहो, सुन्दर बड़े बड़े नयनवाले लक्ष्मीपति (नारायण) कहाँ हैं ।” राधिका “ श्याम, श्याम ” कहकर पुकारती हुई फिर रही है । उस ध्वनि से वृन्दावन आच्छन्न हो रहा है । “ मेरा गर्व जानकर मेरे प्रिय दूर चले गये हैं—मैंने अन्याय पूर्वक अपना गर्व बढ़ाया था । अब उनको देखे बिना मुझ से रहा नहीं जाता । अभी श्यामसुन्दर गा रहे थे । पशुगण, वृत्त, वन, सारस, पक्षी किसीने नहीं बताया ? वह यमुना-तट पर वृत्त के नीचे मुरली का अधर-रस पान कर रहे थे । हे तुलसी, तुम तो सभी जानती हो, घन-श्याम-शरीर कृष्ण कहाँ हैं ? हे हरिणी, हे भ्रमर, हे राजहंस, तुम तो श्याम के साथी हो, दया कर मुझ से कहो, परम दयाल हरि कहाँ हैं ?

राधा शोक-विह्वला होके इस प्रकार से धिलाप करने लगी ।  
( २ ) सब सुखों के आधार मोहन ने, गोपियों को शोकार्त

( १ ) क्वचित्तुलसि कल्याणि गोविन्दचरणप्रिये ।

सहृत्वालिक्लैर्विभ्रष्टस्तेऽतिप्रियोऽच्युतः ॥ भाग—१० । ३०७

मालत्यदर्शि वः कच्चिन्मल्लिके जातियूथिके ।

प्रीतिं वो जनयन् यातः करस्पर्शेन माधवः ॥ भाग ॥ १० । ३० । ८

( २ ) तासामाविरमूच्छोरिः स्मयमानमुखाम्बुजः ।

पीताम्बरधरः सखी साक्षान्मन्मथमन्मथः ॥ भाग—

जान कर वेणु बजाया । तब उन्होंने श्याम के दर्शन-स्पर्शन से हृदय का सन्ताप दूर किया ।

इसके अनन्तर फिर रास का उत्सव चलने लगा । अन्त में जल-क्रीड़ा कर श्रीकृष्ण ने इस लीला को समाप्त किया ।

इस लीला का वर्णन समाप्त करके सूरदास ने गोपियों के पृथ्व जन्म का वृत्तान्त कहा और उनके पद-रज की महिमा का कीर्तन किया ।

## सूर-साहित्य के कुञ्ज अंग

जहाँ प्रेम है वहाँ मान भी है। मान क्या है? बालक घराटों से माता के स्नेहालिङ्गन से वञ्चित हो रहा है—वह चाहता है कि माता उसके पास आकर उसे गोद में उठा कर कण्ठ से लगावे, चुम्बन करे और स्तन्य-पान करावे। किन्तु माता गृह-कार्य में व्यस्त रहने के कारण, विवश होकर उसके प्रति ध्यान नहीं दे सकती। बालक माता को पुकार-पुकार कर हार गया है, ऐसे समय पर माता उसके पास पहुँचती है और प्यार से उसे गोद में उठा लेना चाहती है। किन्तु माता इतनी देर तक उसके प्रति उदासीन थी, यह सोच कर बालक क्रुद्ध हो, उसके प्रिय-सम्भाषण का प्रत्याख्यान कर मृष्ट हो जाता है—मनाये नहीं मानता है। नाना मिष्ट वाक्य और नाना प्रलोभनों के द्वारा दीर्घ समय के बाद वह शान्त होता है। इसी प्रकार यदि नायिका को तिल-मात्र भी सन्देह हो कि उसका प्रेमास्पद उसकी अवहेलना कर रहा है, तो इसका परिणाम भयावह होता है। इतने दिनों का निविड़ प्रेम ही अपराध का कारण विवेचित होता है। “क्या भयङ्कर शठता है? अब मैं समझ गयी हूँ कि मैं इतने दिनों तक प्रतारित होती आयी हूँ।” वह मनाये नहीं मानती। रस-शास्त्र में इसी को मान कहते हैं। वेणी प्रवीण ने मानवती का साधारण लक्षण यों दिया है—

कबू ईरषा दोष तें, पिय सों रहै रिसाइ ।

सबै नायकन में सोई, मानवती ठहराइ ॥

नारी-चरित्र का एक प्रधान अङ्ग है सपत्नी-विद्वेष ।  
नारी पति पर सोलह आना अधिकार जमाये रखना चाहती है—

भाग लेने वाली पर ईर्ष्या या बैर-भाव स्वाभाविक है। जिसके सपत्नी है, उसकी तो अशान्ति की सीमा नहीं; जिसके नहीं है, उसके मन में भी सदा भय रहता है कि पति-देवता कब क्या कर बैठें। यहाँ तक कि माता जानकी के हृदय में भी एक बार इस प्रकार की शंका उपस्थित हुई थी। जानकी को विवाह कर घर लौटने के समय श्रीरामचंद्र को परशुराम ने रास्ते में छेँक लिया और उनकी परीक्षा के लिए एक दूसरा हर-धनु निकाला। यह देखकर जानकी जो का मुँह सूख गया, सोचा—

एक बार धनुष ताड़ रघुराय ।  
किया है ब्याह मुझे मिथिलाय ॥  
बहुरि धनुष यह लाये भृगुमुनि ।  
न जानूँ सौत होंगी कितनी ॥

( कृत्तिवास का बंगला रामायण, परिचर्तित )

राधा को सन्देह हुआ कि कृष्ण अन्य गोपियों से प्रीति करते हैं। इस कारण वे मान करके बैठ रहीं। कोई गोपी कृष्ण को यह समाचार देती है—

ललन तुम्हारी प्यारी आजु मनायो न मानति ।  
बूझि न परति जानि का बैठो कियो जु इत रीस ॥  
तुमही लै काटि अवगुण गावति ।

दूती से—

यह सुनि श्याम विरह भरे ।  
कहुँ मुकुट कहुँ कटि पीताम्बर मुरझि धरनि परे ॥  
युवति भरि अकवारि लीन्हो है कहा गिरिधारि ।  
आपही चलि बाँह गहिये अङ्ग लीजै नारि ॥  
अतिहि व्याकुल होत काहे धरो धीरज श्याम ।  
सूर प्रभु तुम बड़े नागर विवश कीन्हे काम ॥

श्याम को धीरज देकर दूती फिर राधा के पास आयी और उनसे कहा—

चलो किनि माननि कुंज कुटीर ।

तुव बिनु कुँअर कोटि वनिता तजि, सहत मदन की पीर ॥  
गदगद सुर पुलकित विरहानल, नैन विलोकन नीर ।  
कासि-कासि वृषभानुनंदिनी, विलपत विपिन अधोर ॥  
बंसी विसिख माल व्यालावलि, पंचानन पिक कीर ।  
मलयज गरल हुतासन मारुत, साखा-मृग रिपु वीर ॥  
हिय में हरषि प्रेम अति आतुर, चतुर चलहु प्रिय तीर ।  
सुनि भयभोत ब्रज के पिंजर, सूर सुरति रनधीर ॥

हे माननि, कुंज-कुटीर को क्यों नहीं चलती ? तेरे बिना कुँअर कन्हाई कांठि कामिनियों को त्याग कर मदन की पीड़ा अनुभव कर रहे हैं। विरह के सन्ताप से उनका स्वर गदगद और शरीर काण्टकित हो रहा है—उनके नयनों की दृष्टि अश्रु-पूर्ण हो रही है। “हे वृषभानु-नन्दिनी, तुम कहाँ हो, तुम कहाँ हो” यह कहते हुए वे वन के भीतर अधोर हो विलाप कर रहे हैं। उनकी वंशी अब उनको वाण-स्वरूप हो रही है, और उनके गले की माला सर्पसदृश। शुक तथा कांकिल सिंह के समान डरावने हो गये हैं। चन्दन हलाहल-सा मालूम होता है और वायु अग्नि सी। मदन प्रबल हो गया है। हे चतुरे राधे, हृदय में हर्षान्वित और प्रेम में व्याकुल होकर, प्रिय के पास चलो। यह सुनकर बज्रसार-कठिन-हृदया तथा सुरत-रण-धीरा राधा भय-भोता हो गयीं।

दूती श्रीकृष्ण के निकट आकर बोली—

प्रिया प्रिय नहिं मनाओ मानै ।

श्रीमुख वचन मधुर मृदुवाणी मादक कठिन कुलिशहु ते जाने ।

शोभित सहित सुगंध श्याम कच कल कपोल अरुम्हाने ।  
मनहुँ विध्वंसज ग्रस्यो कलानिधि तजत नहीं बिन दाने ॥  
बाल भाष अनुसरति भरति दृग अग्र अंशुकन आनै ।  
जनु खँजरीट युगल जठरातुर लेत सुभष अकुलानै ॥  
गौर गात पर लसत असित पट और प्रगट पहिचानै ।  
नैन निकट ताटक की शोभा मंडल कविन बखानै ॥  
मानों मनमथ फंद वासते फिरत कुरंग सकानै ।  
नासापुटनि सकोचति लांचति बिकट भ्रुकुटि धनु तानै ॥  
जनु शुक निकट निपट शर साये षटपट सुभट पराने ।  
जनु खद्योत चमक चलि शंकति निशि तिमिर में हिराने ॥  
यह सुनिके अकुलाइ चले हरि कृत अपराध क्षमाने ।  
सूरदास प्रभु मिले परस्पर मानिनि मिलि मुसुकाने ॥

हे श्याम तुम्हारी प्रिया राधा मनाये नहीं मानती । तुमने श्रोमुख से मधुर तथा गर्व बढ़ानेवाली जो मृदु वाणी कह भेजी थी, वह उसे बज्र से भी कठिन जान पड़ी । सौरभ-विशिष्ट काला केशपाश उसके सुन्दर गालों पर अटक जाने के कारण उसका मुख ऐसा मनोहर लगता है मानों राहु चन्द्रमा का लील गया है और बिना दान के उसे नहीं छोड़ेगा । वह बच्चों की भाँति रो रो कर आँखों को जलपूर्ण कर रही है, और अभ्रुकण सामने आ जाने से ऐसा प्रतीत होता है, मानों दो खञ्जन भूख से कातर होकर स्वादिष्ट खाद्य-संग्रह कर रहे हैं । गारे तन पर नील साड़ी ऊँज रही है और दानों रङ्गों के अन्तर के कारण कान्ति अधिक परिस्फुटित हो रही है । नयन के निकट चक्राकार करनफूल की शोभा की व्याख्या कवियों ने यह की है कि मानों मदन के फन्दे से भयभीत होकर हिरण चञ्चल हो रहा है । धनुष के सदृश तनी हुई बाँकी भ्रूयुग के शानित वाणों के डर से मानों नासिका से पराभूत होकर शुक युद्ध-

क्षेत्र से भाग रहा है—मानों अन्धकार अभी चला जायगा इस डर से जुगनू हीन-प्रभ हो रही है। यह सुन के आकुल होकर हरिजी अपने किये अपराध को क्षमा कराने के लिए श्रीराधा के पास चले। दोनों का मिलन हुआ और मनिनी प्रसन्न हुई।

### वसन्तोत्सव

प्रकृति-वर्णन काव्य का एक महत्वपूर्ण अङ्ग है। मानव-मन पर प्रकृति की गहरी छाप पड़ती है। मनुष्य-हृदय के सुख-दुःख के साथ प्रकृति के सम्बन्ध का अनुभव करना कवि-हृदय की एक विशेष शक्ति है। वसन्त-कालिक प्रकृति-सौन्दर्य में कविता के अनन्त उपकरण मिलते हैं। तुरन्त शिशिर के प्रकोप से प्रकृति देवी स्नान हो रही थी। ऋतुराज का शुभागमन होते ही वह अपने आपको नाना शृंगारों से विभूषित करती है—धरापृष्ठ पत्र-पुष्पों से सुश्यामाङ्ग हो जाता है—मलय-एषन धीरे-धीरे प्रवाहित होता है—किशुक इत्यादि नाना विहङ्गों का आविर्भाव होता है—उनके मधुर कूजन से दिग्मण्डल मुखरित होता है—वायुमण्डल में आम्र-मुकुल, नागकेसर, मल्लिका, माधवी, चम्पा इत्यादि के परिमल मिश्रित होकर नासिका को परितृप्त करते हैं—अशोक तथा किशुक का अरुण वैभव नयनों को मुग्ध करता है। इस सुखमय समय का प्रभाव मानव-मन पर पड़ना असम्भव नहीं। नर-नारियों, विशेष कर तरुण-तरुणियों का हर्ष उमड़ पड़ता है। वे अपने उमंग के प्रकाश के निमित्त व्यग्र होकर उत्सव मनाते हैं। अनेक कवियों ने वसन्तोत्सव का वर्णन किया है और जयदेव, विद्यापति इत्यादि महाकवियों ने इस विषय में बहुत सफलता दिखलायी है। सूरदास का वसन्त-वर्णन भी बहुत मधुर है। उनका एक पद पाठकों की भेंट किया जाता है—

सुंदर संग ललना विहरी, वसन्त सरस ऋतु आयी ।  
 लैलै छरी कुँवरि राधिका, कमलनयन पर धायी ॥  
 द्वादस बन रतनारे देखियत, चहुँदिसि टेसू फूले ।  
 मौरे अंबुषा औ द्रुम वेली, मधुकर परिमल भूले ॥  
 सरिता सीतल बहत मंदगति, रवि उत्तर दिसि आयो ।  
 प्रेम उमंगि कोकिला बोली, बिरहिनि विरह जगाओ ॥  
 ताल, मृदंग, बीन, बाँसुरि, डफ, गावत मधुरी बानी ।  
 देत परस्पर गारि मुदित हैं, तरुनी बाल सयानी ॥

सरस वसन्त ऋतु आया । सुन्दर कृष्ण के साथ ललना राधा विहार कर रही हैं । पिचकारी भर-भर कर कृष्ण की ओर राधा धावित होती हैं । चारों ओर पलास के फूल खिलने के कारण बन-भूमि लाल रंग की हो गयी है । आम्र तथा अन्यान्य बनस्पति और नाना लताएँ मुकुलित हैं । भ्रमरगण सुगन्ध पाकर विह्वल हो रहे हैं । शीतल नदियाँ धीरे-धीरे बह रही हैं । सूर्यदेव उत्तर दिशा को चले आये हैं । कोकिला की कूकें प्रेम से उद्वेलित बिरहिणियों के हृदयों में विरह-व्यथा उत्पन्न कर रही हैं । करताल, मृदङ्ग, घीणा, वंशी और खंजरी की सहायता से मधुर सङ्गीत हो रहा है । बालिका तरुणी और प्रौढ़ागण सङ्गीत के भीतर ही हर्ष से परस्पर गालियाँ दे रही हैं ।

एक शरत्-कालीन उत्सव का चित्र देखिये—

जमुना के तट खेलति हरि संग, राधा सहित सब गोपी हो ।  
 नंद को लाल गोबरधनधारी, तिनके नख मनि-ओपी हो ।  
 चलहु सखी जैये तहाँ छिन, जियरा न रहाये हो ।  
 बेनु सबद मन हरि लीनो, नाना राग बजायी हो ।  
 सजल जलद तन पीताम्बर ऋषि, कर मुख मुरली धारी हो ।  
 लटपटी पाग बने मनमोहन, ललना रही निहारी हो ।  
 नैन-सैन सों नैन मिलें, कर सों कर भुजा ठये हरि ग्रीवा हो ।

मध्य नायक गोपाल विराजत, सुन्दरता की सीँवा हो।  
करत केलि कौतूहल माधव, मधुरी बानी गावै हो।  
पूरन चंद सरद की रजनी, संतन सुख उपजावै हो।  
सकल सुँगार कियो ब्रजबनिता, नख सिख लोभ लुटानी हो।  
लोक वेद कुल धर्म केत की, नेकु न मानत कानी हो।  
माधव नारि, नारि माधव पै, छिरकत चोआ चन्दन हो।  
ऐसो खेल मचौ उपरापरि, नँदनँदन जगवन्दन हो ॥

यमुना के तट पर गोपियों को संग में लेकर राधा हरि के साथ खेल रही हैं। गोवर्धनधारी नन्द-दुलारे की नख-मणि की क्या ही शोभा हो रही है ! चल, सखी, वहाँ चलें। मेरा जी एक मुहूर्त के लिए भी स्थिर नहीं होता है। नाना राग बजाता हुआ वेणु अपने सुरों से मन को हर ले रहा है। वर्षणोन्मुख मेघ के सदृश रंग-विशिष्ट देह-धारी पीला वस्त्र पहन श्रीकृष्ण मुख और हाथ में मुरली धारण किये रहने के कारण बहुत ही सुन्दर मालूम होते हैं। मन को मोहित करने वाले श्रीकृष्ण मन को लुभानेवाली पगड़ी से सज्जित हुए हैं। सुन्दरीगण उन्हें एकटक देख रही हैं। कृष्ण के कटाक्ष के साथ ललनाओं के कटाक्ष लड़ रहे हैं, हाथ से हाथ मिल रहा है और सुन्दरीगण अपने बाहुओं के द्वारा हरि का करावेष्टन कर रही हैं। सौन्दर्य की सीमा गोपाल, गोपियों के बीच में विराजमान है। माधव प्रबल आसक्ति के साथ क्रीड़ा में नियुक्त हैं और मधुर स्वर से गान कर रहे हैं। शरत्कालीन पूर्ण चन्द्रोज्ज्वल रजनी साधुओं के मन में भी सुख उत्पन्न करती है, तरुण-तरुणियों की तो बात ही क्या है ? सकल वेश-भूषाओं से सज्जित ब्रज-बनितागण सम्पूर्णतया लोभ-वशवर्ती होके लोकाचार, कुल-धर्म तथा कुल-मर्यादा का तिल मात्र भी सन्मान नहीं कर रही हैं। माधव नारियों पर और नारियाँ माधव पर चोआ-चन्दन छिड़क रही

हैं। इस प्रकार की प्रतिस्पर्धात्मक क्रीड़ा हो रही है और जग-  
घन्दन नन्दनन्दन उसमें नियुक्त हैं।

### गोपिका-विरह

विरह ही प्रेम की कसौटी है। संयोग की अवस्था में प्रेम का यथार्थ स्फुरण नहीं होता। वियोग में ही उसका ठीक-ठीक परिचय मिलता है।

श्रीकृष्ण की लोक-प्रियता तथा शक्ति की बात सुनके मथुरा के राजा कंस के मन में अत्यन्त भय उत्पन्न हुआ, क्योंकि उसने सुना था कि उसका निधनकारी ब्रज-मंडल में कहीं छिपा है। कृष्ण के बध-साधन के उद्देश्य से उसे किसी उपाय से मथुरा लेजाने का परामर्श होने लगा। निश्चित हुआ कि सुफलक का पुत्र अक्रूर गोकुल में जाकर नन्द से कहेगा कि कृष्ण ने कालिय-नाग का दमन कर काली हृद से राजा कंस के आज्ञानुसार कमल-फूलों का संग्रह कर दिया था; इस कारण राजा उन पर बहुत प्रसन्न हैं और कृष्ण-बलदेव के अपूर्व सौन्दर्य का विधरण सुनके राजा ने उनको देखने की इच्छा की है। राजा उनको पुरस्कृत करना चाहते हैं। अतएव अक्रूर ने कहा कि वह उनको रथ में चढ़ाके मथुरा ले जायगा।

नन्द तथा यशोदा यह समाचार सुन कर बज्राहत सद्वश हो गये। ब्रज के गोप और गोपियों में हाहाकार मच गया। नन्द ने इसके पहले इस प्रकार का स्वप्न देखा था और स्वप्न सत्य हो चला देखके अत्यन्त भयभीत हुए—

व्याकुल नन्द सुनत हैं बानी ।

धरनी मुरझि परे अति व्याकुल, बिबस जसोदा रानी ॥  
व्याकुल गोप ग्वाल सब व्याकुल, व्याकुल ब्रज की नारी ।  
व्याकुल सखा स्याम बल के जे, व्याकुल अति जिय भारी ।

गोकुल में जो जहाँ थे सब व्याकुल हो उठे । ब्रज की नारियाँ तथा कृष्ण बलराम के सखा गण सब व्याकुल एवं मृतप्राय हो गये ।

यशोदा तथा गोपियों के विरह सम्बन्धी असंख्य उत्कृष्ट पद सूरदास के काव्य में मिलते हैं । किसको छोड़ कर कौन पद चुना जाय यह निर्णय करना बहुत कठिन है । नीचे जहाँ-तहाँ से कुछ पद उद्धृत किये जाते हैं—

अनल ते विरह अग्नि अति ताती ।

माधो चलन कहत मधुबन को, सुन तापै अति काती ॥

न्याइ ही नागरि बिरह बस, जरत दिया ज्यों बाती ।

जे जरि मरे प्रगट पावक परि, ते त्रिय अधिक सुहाती ॥

ढारति नोर नयन भरि-भरि सब, व्याकुलता मदमाती ।

सूर व्यथा सोई पै जानै, स्याम सुरत रंगराती ॥

विरह का संताप अग्नि से भी अधिक उष्ण है । माधव से मथुरा जाने की बात कही जाती है, यह सुनकर हृदय दग्ध हो जाता है । यथार्थ ही नगर की नारियाँ दीप की बत्ती के सदृश भीतर ही भीतर जल कर भस्म हो रही हैं । उनकी दुर्दशा कोई नहीं लक्ष्य करता किन्तु जो स्त्रियाँ प्रत्यक्ष अग्नि में कूद पड़ती हैं वे ही अधिक प्रशंसा पाती हैं । व्याकुलता-रूपी मदिरा से मत्त होके गोपियाँ नयन भर-भर कर जल-मोचन कर रही हैं । व्यथा वही जानती है जो श्यामसुन्दर के प्रेम-रंग से रंगी गयी है ।

इस वियोग से यशोदा देवी की जो करुण दशा हुई थी उसका वर्णन सुनिष्ट—

मेरो माई निधनी को धन माधो ।

बारंबार निरखि मन मानत, त्यजत नहीं पल आधो ॥

छिन-छिन परसत अङ्ग मिलावत, प्रेम प्रकट है लाधो ।  
निसि दिन सुचन्द्र चकोर की छबिजनु, मिटै न दरस को साधो ।  
करि है कहा अक्रूर हमारो, दै हैं प्रान अगाधो ।  
सूर स्याम घन हम नहिं पठऊँ, अबहि कंस किन बाँधौ ॥

माधव मेरा निर्धन का धन है । बार-बार उसे निरीक्षण करते हुए भी तृप्ति नहीं होती । मैं आधा पल भी उसे छोड़ कर नहीं रह सकती । मैं क्षण-क्षण उसे स्पर्श कर उसके अङ्ग मिला लेती हूँ । वह उपलब्ध होने से, अर्थात् उसे निकट पाने से, मेरा प्रेम प्रकट हो पड़ता है । चन्द्र के प्रति चकोर की भाँति निशि-दिन मेरी अवस्था है, मानों देखने को आकांक्षा मिटती ही नहीं । मैं अपने श्याम घन को जाने न दूँगी । अक्रूर मेरा क्या करेगा ? भले ही वह मेरे प्राण को अगाध ( जल ) में फेंके, कंस मुझे अभी बाँध क्यों न ले, परन्तु मैं उसे जाने न दूँगी ।

मथुरा चले जाकर श्याम ने गोपियों के प्रति जो अनुचित वर्ताव किया था, उसकी आलोचना सुनिये—

सखी री स्याम सबै इक सार ।

मीठे वचन सुहाये बोलत, अन्तर जारनहार ।  
भँवर कुरंग काग अरु कोकिल, कपटिन की चटसार ।  
कमल नयन मधुपुरी सिधारे, मिटिगो मंगलचार ।  
सुनहु सखी री दोष न काहू, जो विधि लिखो लिलार ।  
यह करतूति इन्हैं की नाई, पूरव विविध विचार ।  
उमगि घटा नँधि आवै पावस प्रीति की रीति अपार ॥

हे सखी कृष्णवर्णवाले सब एक ही प्रकृति के होते हैं । वे मीठे वचनों को और भी मीठे कर बोलना जानते हैं, किन्तु अन्तर को जला देने से नहीं चूकते । भ्रमर, कृष्णसार हरिण, काक और कोकिल को लेकर कपटियों की पाठशाला बनती

है। कमल-नयन मथुरा चले गये कि सब पवित्र सम्बन्ध मिट गया। सुन री. सखी, इसमें किसी का दोष नहीं। विधाता ने जलाट पर जो कुछ लिखा है वही होनेवाला है। पहले बड़ी-बड़ी बातें कही थीं, अब उन्होंने जो काम किया है, वह उन्हीं के स्वभाव के अनुरूप है। वर्षाकाल में मेघ जलपूर्ण होकर वेग से आता है किन्तु वर्षान्त में अदृश्य हो जाता है और चातक केवल पुकारता ही रह जाता है। प्रेम की गति विचित्र है !

यशोदा की दो मर्म-विदारक उक्तियाँ सुनिये—

मेरे कुँअर कान्हू बिन सब कुछ वैसेही धरयो रहै ।

को उठि प्रात होत लै माखन, को कर नेत गहै ॥

सूने भवन जसोदा सुत के, गुन गुनि सूल सहै ।

दिन उठिघेरत ही घर ग्वारिनि, उरहन कोउ न कहै ॥

जो ब्रज में आनंद होतो सो, मुनि मनसहु न गहै ।

सूरदास स्वामी बिनु गोकुल, कौड़िहू न लहै ॥

मेरे कुमार कन्हैया के बिना जहाँ जो कुछ रहता था ठीक उसी स्थान में वैसा ही पड़ा है। कौन प्रातःकाल में उठते ही मक्खन माँगेगा? कौन मेरे हाथ से मन्थन-रज्जु खींचेगा? शून्य भवन में यशोदा पुत्र का गुण-गान कर रही हैं और शूल सह रही हैं। प्रातःकाल उठते ही प्रतिदिन ग्वाल्लिनीगण मेरा घर घेर लेती थीं, अब तो कोई अभियोग की बातें नहीं कहतीं। जो आनंद ब्रज में होता था, उसे मुनिगण मानस-क्षेत्र में भी ग्रहण नहीं कर सकते। कृष्ण के अभाव से गोकुल एक कौड़ी भी प्राप्त करने के योग्य न रहा।

मानों हों ऐसे ही मरि जेहों ।

इहि आँगन गोपाल लाल को, कबहुँक कनियाँ लैहों ॥

कब कह मुख बहुरों देखोंगी, कब वैसो सचु पैहों ।

कब मोपै माखन माँगेगो, कब रोटी धरि दैहों ॥

मिलन-आस तनु प्रान रहत हैं, दिन दस मारग चैहौं ।

जो न सूर कान्ह आइहैं तौ, जाइ जमुन धँसि लैहौं ॥

मुझे ऐसा अनुमान होता है कि मैं इसी दशा में मर जाऊँगी । इस आँगन में क्या मैं फिर कभी गोपाल को गोद में ले सकूँगी ? फिर कब मैं वह मुख देखूँगी, फिर कब वह मक्खन माँगेगा, फिर कब उसके सामने रोटी धर दूँगी ? केवल मिलन की आशा से ही मेरी देह में प्राण हैं । दिन दसेक और उसकी बाट जोहती रहूँगी । फिर यदि कन्हाई न आया, तो यमुना में प्रवेश करूँगी ।

गोपिकाविरह के और भी कुछ पद सुन लीजिये—

नैन सलोने स्याम हरि कब आवहिंगे ।

वै जो देखत राते-राते, फूलन फूले डार ।

हरि बिन फूलभरी सी लागति, भरि भरि परत अंगार ॥

बीनन फूल न जाउ सखीरी, हरि बिन कैसे फूल । \*

सुन री सखि मोहिं लागत हरि बिनु, फूले फूल त्रिसूल ॥

जब तैं पनिघट जाऊँ सखीरी, वा जमुना के तीर ।

भरि-भरि जमुना उमड़ि चलति है, इन नैननि के नीर ॥

इन नैननि के नीर सखीरी, सेज भई घर नाऊँ ।

चाहत हौं ताही पै चढ़ि-कै, हरिजी के ढिग जाऊँ ।

मेरे नयनों के प्रिय हरि कब आयेंगे ? वे जो लाल-लाल फूल वृक्ष की डालों को सुशोभित कर रहे हैं, हरि के बिना फुलभरियों के समान लगते हैं—उनमें से मानों अंगारे भर रहे हैं । सखी अब पुष्प-चयन करने को न जाया कर । हरि नहीं है,

\* आर किलो सजे कुसुमेर हार ।

केन लो हरिलि भूषण लतार ॥

अलि बँधु तार के आछे राधार ।

हतभागिनी ब्रजेरि बालार ॥ —माइकेल, ब्रजाङ्गना ।

फूलों का क्या होगा ? हरि के अभाव में खिले फूल त्रिशूल के सदृश चुभनेवाले जान पड़ते हैं । जब मैं यमुना के तीर पानी भरने को जाती हूँ, तब मेरी आँखों के आँसुओं से यमुना उमड़ पड़ती है । इन नयनों से इतना पानी बहता है कि मेरा घर भर जाता है और मेरी शय्या नाव के सदृश उसमें उतराने लगती है— इच्छा होती है कि उस नाव पर चढ़के हरि के पास जाऊँ ।

प्रीति कर काहू सुख न लह्यौ ।

प्रीति पतङ्ग करी दीपक सौं, आपै प्राण दह्यौ ।  
अलिखत प्रीति करी जलसुत सौं, सम्पति हाथ गह्यौ ।  
सारंग प्रीति करी जो नाद सौं, सम्मुख बान सह्यौ ॥  
हम जो प्रीति करी माधो सौं, चलत न कछू कह्यौ ।  
सूरदास प्रभु बिन दुख दूनो, नैननि नीर बह्यौ ॥

और भी—

बिछुरे श्रीब्रजराज आजु तौ, नयनन ते परतीति गयी ।  
उठि न गयी हरि संग तबही ते, है न गयी सखि स्याममयी ।  
रूप-रसिक लालची कहावत सो करनी कछुवै न भयी ।  
साँचे कूर कुटिल ए लोचन, वृथा मीन कृबि क्रीन लयी ॥  
अब काहे जल मोचत सोचत, समौ गये ते सूल नये ।  
सूरदास याही ते जड़ भये, इन पलकन ही दगा दये ॥

मेरे नयनों पर पहले मेरा जो विश्वास था, श्रीकृष्ण से विच्छिन्न होने पर वह विश्वास दूर हो गया है । जब ब्रज-राज जाने लगे थे, उसी घड़ी मेरी आँखें देह से अलग होके उनके साथ क्यों न हुई थीं ? वे तत्काल ही श्याम के साथ एकीभूत क्यों न हो गयी थीं ? कहा जाता है कि मेरे रूप-रसिक नयन श्याम के लिए सदा लालसा-युक्त रहते हैं, इसका परिचय तो कुछ भी न मिला ! मेरे नयनों ने मीन के नयनों की शोभा हरण करली है, ऐसा कहा जाता है, किन्तु वे गलकहीन कैसे कहे जा

सकते हैं ? ( यदि पलकें पड़ती ही न होतीं, तो क्या मेरे नयन श्याम का संग छोड़ते ? ) अब देखती हूँ कि वे सत्य ही कुटिल ( ममताहीन ) हैं । अब अश्रुवर्षण कर शोक करने से क्या होगा ? समय बीतने पर आँखों की यातना ( शूल ) घटी नहीं, प्रत्युत तीव्र होती गयी । मेरे नयनों की पलकों ने ही मुझे प्रतारित किया है ।

काहे को पिय पियहिं रटत हो, पिया को प्रेम तेरो प्रान हरैगो  
काहेको लेत नैन जल भरिभरि, नैन भरेतें कैसे सूल टरैगो ॥  
काहे को स्वास उसाँस लेति हौ, बैरी बिरह को दावा जरैगो ।  
झाल सुगंध पुहपावलि हारु, छुए तें हिय हार जरैगो ॥  
बदन दुराइ बैठि मंदिर में, बहुरि निसापति उदय करैगो ।  
सूर सखी अपने इन नैननि चंद्रचितै जिनि चंद्र जरैगो ॥

क्यों ' प्रिय, ' ' प्रिय ' शब्द बार-बार घोखती है ? तू समझती नहीं है कि प्रिय का प्रेम तेरा प्राण ले लेगा ? तू क्यों नयनों को अश्रुपूर्ण कर रही है ? नयन जल-पूर्ण करने से क्या यातना की शान्ति होगी ? तू व्यर्थ क्यों ठगड़ी साँस भर रही है ? विरह-रूपी शत्रु का दावानल जलता ही रहेगा । सुगन्ध झाल और पुष्पमाला के स्पर्श से तेरे हृदय के हाड़ जलने लगेंगे । तू घर के भीतर जाकर छिपकर बैठी रह, क्योंकि चन्द्र फिर उदित होगा । यदि तू अपनी इन ( ज्वालामुखी ) आँखों से उस पर दृष्टिपात करेगी तो वह जल जायगा ।

राधा के विरह का एक चित्र देखिये—

लखियत कालिन्दी अति कारी ।

कहियो पथिक जाइ हरि सों ज्यों, भई बिरह जुर जारी ।  
मनु पलिका पै परी धरनि धँसि, तरंग तलफ तनु भारी ।  
तट बारू उपचार चूर मनो, स्वेद-प्रवाह पनारी ।  
विगलित कच कुस कास पुलिन मनो, पंकज कज्जल सारी ।

भ्रमर मनो मति भ्रमती चहुँदिसि, फिरती अँग दुखारी ।  
निसि दिन चकई व्याज बकत मुख, किन-मानस अनुहारी ।  
मथुरा से श्रीकृष्ण ने माता की सान्त्वना के लिए जो कुछ  
कहला भेजा था वह सुनिये—

कह्यो कान्ह सुनु जसुमति मैया ।

आवहिगे दिन चार-पाँच में, हम हलधर दोउ भैया ॥  
मुरली बँत बिसान देखिओ, छड़ी बेर सबेरो ।  
लै जिनि जाय चुराय राधिका, कछुक खिलौना मेरो ॥  
जा दिन तैं तुमसे बितुरे हम, कोउ न कहत कन्हैया ।  
भोरहि नाहि कलेऊ कीनो, साँझ नाहि पियो घैया ॥  
कहि न बनत सँदेसो मोपै, जननि जितो दुख पायो ।  
अब मोसों वसुदेव देवकी, कहत आपुनो जायो ॥  
कहिये कहा नंद बाबा सों, बहुत निदुर मन कीनो ।  
सूर हमहि पहुँचाइ मधुपुरी, बहुरो सुधिहि न लीनो ॥

हे यशोमति माता, सुनिये कन्हाई ने आपसे क्या कहा है ।  
चार-पाँच दिनों के भीतर ही मैं और हलधर दोनों भाई गोकुल  
में आयेंगे । मेरी मुरली, बँत की छड़ी, विषाण और शृंगी सबेरे  
और सन्ध्या दोनों समय देखती रहना—देखिओ कि मेरा कोई  
खिलौना राधिका चुरा न ले जाय । जिस दिन से मैं तुमसे अलग  
हो गया हूँ, उस दिन से कोई मुझे कन्हाई नाम से नहीं पुकारता ।  
तभी से मैंने प्रातःकाल कलेवा नहीं की और न साँझ को तत्का-  
लीन दुहा दूध पिया । उस दिन से मैंने जितने दुःख पाये हैं,  
कहे नहीं जा सकते । अब वसुदेव और देवकी मुझसे कहते हैं कि  
मैं उनका जात (पुत्र) हूँ । पिता नन्द की बात क्या कही जाय,  
उन्होंने अपना मन बहुत ममता-शून्य कर लिया है—मुझे मथुरा  
पहुँचा देने के बाद उन्होंने मेरी कोई खोज नहीं की ।

## सुर-साहित्य में भ्रमर-गीत

अपने अलौकिक प्रेम का अमृत पिला कर, रास के दिव्य रस से गोपियों के हृदय को पागल बनाकर, अपनी बाल-सुलभ निर्दोष केलि-क्रीड़ाओं से उनको अनुप्राणित कर नटनागर मथुरा चले गये। विरह की मारी गोपियाँ अपने हृदय धन को न पाकर अस्त-व्यस्त स्थिति में घन-घन मारी फिरती हैं, उन्हें कहीं कुछ सुहाता नहीं। मधुवन, यमुना, करीलकुञ्ज, वंशीवट मानो काट खा रहे हैं। जो कुछ सामने आता है श्याम की स्मृति लिये। झुल्ला उठता है गोपियों का विह्वल हृदय। वे पूछती हैं—अरे मधुवन ! तुम्हें लज्जा नहीं लगती कि अब भी, जब श्यामसुन्दर के विरहानल में समस्त व्रज झुलस रहा है, हरे भरे बने हो ?

मधुवन तुम कस रहत हरे ?

विरह-वियोग श्याम सुन्दर के ठाढ़े क्यों न जरे ?

श्याम की प्यारी गौओं ने चरना छोड़ दिया है। तोता और मैना चुपचोप मुँह लटकाये उदास बैठे हैं। चारों ओर विरहानल धाँय-धाँय जल रहा रहै और उसमें समस्त व्रज झुलस रहा है। आँसुओं का समुद्र उमड़ पड़ा है तथा आहों की उत्तप्त भीषण आँधी चल रही है। इसी लुब्ध स्थिति में जब समस्त व्रजवासी विरह से व्याकुल हो रहे हैं, गोपियों के प्राण अब-तब हो रहे हैं—उद्धव जी ब्रह्मज्ञान, अद्वैतवाद और योग की गठरी लादे गोपियों को समझाने-बुझाने पहुँचते हैं। प्रेमानल और भी प्रबल हो उठता है और उसमें सब कुछ जल कर केवल सर्वत्र एक श्याम ही रह जाते हैं। इसी विरह-जन्य प्रेम की कातरता को भक्त-प्रवर सूरदास जी ने भ्रमर-गीत में अङ्कित किया है। भ्रमर-

गीत सूरदास के काव्य का एक अति सुन्दर अंश है, यह उद्धव-गोपी-संवाद है। मथुरा पहुँच कर श्री कृष्ण समझ गये कि उनका अब गोकुल लौटना असम्भव है, पर यह भी जानते थे कि व्रज में माता यशोदा और गोपियाँ उनके लिए कैसी कातर हो रही हैं। उन्हें सान्त्वना देने के उद्देश्य से उन्होंने अपने भक्त प्रिय-सुहृद् उद्धव को व्रज भेजा। श्रीकृष्ण ने उद्धव जी से यह कह दिया कि तुम व्रज में पहुँच कर गोपियों से कहो कि अब तुम्हें श्रीकृष्ण का दर्शन मिलना सम्भव नहीं। अतएव तुमलोग अब से योग-मार्ग का अवलम्बन कर निर्गुण रूप में और निष्काम भाव से उनकी ( भगवान् की ) उपासना करो। यह उपदेश गोपियों को हृदयग्राही न हुआ। वे श्रीकृष्ण को साक्षात् देखना चाहती थीं। निर्गुण उपासना की बात सुनकर उन्होंने उसे हँसी में उड़ा दिया। उद्धव के साथ गोपियों की बातचीत अति सरस है। मेरे विचार में भ्रमर-गीत ही सूरदास की सब से मधुर रचना है। गोपियों की युक्तियाँ अति मनोहर हैं।

जिस समय उद्धव व्रज में उपस्थित होकर गोपियों को उपदेश दे रहे थे, उस समय एक भ्रमर मथुरा की ओर से उड़ कर श्रीराधा के चरण कमल पर आ बैठा। उद्धव की उक्तियों के उत्तर में गोपियों को जो कुछ कहने को था उन्होंने वह प्रायः उस भ्रमर को सम्बोधन कर कहा था। उद्धव श्रीकृष्ण के सखा थे और उनकी आकृति तथा वर्ण श्रीकृष्ण की आकृति तथा वर्ण के सदृश थे। उनके घसन भूषण में भी श्रीकृष्ण का सादृश्य था। इस कारण गोपियों ने उनके साथ बहुत हास-परिहास किया था। इस भ्रमर-गीत में सूरदास ने अपनी धीर विनोद-प्रियता का परिचय दिया है। तदतिरिक्त उन्होंने हास्यरस का आश्रय लेकर गोपियों के मुख से अद्वैतवाद का खण्डन कराया है। गोपियों ने परिहास में श्रीकृष्ण को भी नहीं छोड़ा।

गोपियों की उक्तियाँ भ्रमर को सम्बोधन कर कही गयी थीं, इस हेतु इन पदों का नाम है 'भ्रमर-गीत' ।

उद्धव का व्रज में आगमन होते ही गोपियों ने उनसे कहा—  
कहो कहाँ ते आये हो ।

जानति हौं अनुमान मनो तुम, गोकुलनाथ पठाये हो ।

वैसेइ बरन बसन पुनि वैसेइ, तनभूसन सजि लाये हो ॥

सरबसु लै तब संग सिधारे, अब का पर पहिराये हो ।

सुनहु मधुप एकै मन सबको, सो तो वहाँ लै जाये हो ॥

अब यह कौन सयानप व्रजपर, का कारन उठि धाये हो ।

'सूर' जहाँ लौं स्याम गात हैं, जानि भले करि पाये हो ॥

कहो कहाँ से आये हो ? अनुमान से जान पड़ता है कि यदुनाथ ने तुमको भेजा है । वही रंग, वही वसन, देह भी उसी प्रकार भूषणों से सज्जित कर लाये हो । तुम हमारा सर्वस्व लेकर चले गये, अब किसपर तुमने लक्ष्य किया है ? हे मधुप ! सुनो, हम सब का एक मात्र मन है, उसे तो तुमने मथुरा ले जाकर छिपा रक्खा है । अब यह कैसी तुम्हारी चतुराई है ? अब व्रज की सुध क्यों की ? जितने काले रंग के मनुष्य हमारे देखने में आये हैं, उनका अच्छा हो परिचय मिला है ? '

ऊपर पद का शेषांश श्रीकृष्ण को लक्ष्य करके कहा गया है । गोपियी ने कृष्णवर्ण मनुष्यों के रंग के सम्बन्ध में नाना स्थल में हँसी उड़ायी है । यथा—

बिलग जनि मानहु ऊधो प्यारे ।

वह मथुरा काजर की कोठरि, जे आवहिं ते कारे ॥

तुम कारे सुफलक-सुत कारे, कारे मधुप भँवारे ।

तिनके संग अधिक छबि उपजत, कमल नैन मनिआरे ॥

मानहुं नील माठतें काढ़ै, जमुना लेत पखारे ।

ता गुन स्याम भई कार्लिदी, 'सूर' स्याम गुन न्यारे ॥

‘कुछ बुरा न मानना, सखा ऊधो ! क्या तुम्हारी मथुरा काजल की कोठरी ही है कि जो कोई वहाँ से आता है वही काला है ? तुम काले हो, अकूर काले और यह मधुप भ्रमर काला है । उनमें अधिक शोभा उत्पन्न करते हैं, सुहावने कमलनयन ( श्रीकृष्ण ) । मानों नील रंग से भरे हुए मटके से निकालकर उन्हें यमुना में धो लिया गया है । इसी हेतु कदाचित् यमुना जी भी कृष्ण-सलिला हो गयी हों ? काले का गुण ही विलक्षण है ।

कारो नाम रूप पुनि कारो, कारे अंग सखा सब गात ।

जो पै भले होत कहूँ कारो, तो कत बदलि सुता लै जात ॥

‘श्रीकृष्ण का नाम काला, रूप काला, उनके सखाओं के सब अंग काले । यदि काला रंग अच्छा ही होता तो वसुदेवजी श्रीकृष्ण के साथ यशोदा की कन्या को क्यों बदलकर ले जाते ?’

घरी पहर सबको बिलमावत, जेते आवत कारे ।

‘जितने काले ( मथुरा से ) आते हैं, वे घड़ी पहर, मीठी-मीठी बातें करके सबको बिलमा लेते हैं और अन्त में धोखा देकर भाग जाते हैं ।’

ज्यों कोइल सुत काग जियावत, भाव भगति भोजनहिं खवाय ।

कुहकुहाय आये वसंत ऋतु, अंत मिले कुल अपने जाय ॥

‘जैसे कौए कोकिल के बच्चों को पालते हैं । बड़े ही यत्न और ममता से उनका पालन-पोषण करते हैं, परन्तु जब वसन्त ऋतु आती है तब वे कुहु-ध्वनि करते हुए अपनी जाति में जाकर मिल जाते हैं ।

ऊधो ! पेसो काम न कीजै ।

एक रंग कारे तुम दोउ, धोय•सेत क्यों कीजै ॥

‘ ऊधो ! कदापि ऐसा काम न करो । तुम दोनों रंग में समान हो, उसे धोकर धौला क्योंकर करोगे ? ’

ब्रज में पहुँच कर उद्धव गोपियों से कहने लगे—

गोपी सुनहु हरि-संदेश ।

मात पितु के बन्दि छोरे, वासुदेव कुमार ।

राज्य दीन्हों उग्रसेनहिं, चमर निज कर ढार ॥

कह्यो तुमको ब्रह्म ध्यावौ, क्वाँड़ि विषै विकार ।

‘ सूर ’ पाती दई लिख मोहिं, पढ़ो गोपकुमारि ॥

‘ हे गोपीगण ! हरिका समाचार सुनो । श्रीकृष्ण ने, जो वसुदेव के पुत्र हैं, अपने पिता-माता को बन्धन से मुक्त किया है, और मातामह उग्रसेन को ( फिर से ) राज्य देकर स्वयं उन पर चँवर डुला रहे हैं । उन्होंने तुमसे कहा है कि संसार का मोह त्याग कर ब्रह्म का ध्यान करो । उन्होंने पत्र लिख कर मेरे हाथ दिया है । हे गोप कुमारीगण ! तुम सब उसे पढ़ देखो । ’

सुनहु गोपी हरि को संदेश ।

करि समाधि अंतर्गति ध्यावहु, यह उनको उपदेश ॥

वै अविगति अविनासी पूरन, सब घट रहै समाइ ।

निर्गुन ज्ञान बिनु मुक्ति नहीं है, वेद पुराननि गाइ ॥

सगुन रूप तजि निर्गुन ध्यावौ, इक चित इक मन लाइ ।

यह उपाध करि बिरह तरौ तुम, मिलै ब्रह्म तब आइ ॥

दुसह सँदेश सुनत माधो को, गोपीजन बिलखानी ।

‘ सूर ’ बिरह की कौन चलावै, बूड़त मन बिनु पानी ॥

गोपियो ! तुम हरिका सँदेशा सुनो । तुम समाधि के द्वारा हृदय में उनका ध्यान करो, यही उनका उपदेश है । वह अविज्ञात, अविनाशी और घट-घट में विद्यमान हैं । वेद-पुराणों में कहा गया है कि निर्गुण का ज्ञान हुए बिना मुक्ति नहीं होती । अतएव सगुण का ज्ञान त्याग कर एकचित तथा एकमन हो रज तथा

तमोगुणरहित ब्रह्म की उपासना करो । इस उपाय से तुम्हें बिरह से छुटकारा मिलेगा और तब ब्रह्म प्राप्त होगा । माधव की यह दुसह वार्ता सुनकर गोपियाँ विलाप करने लगीं । अब बिरह-भार-विशिष्ट मन-नौका को कौन चलावेगा ? दर्शन-घारि के बिना मन-नौका तो सूखी नदी के गर्भ में ही डूबी जा रही है ।’

एक गोपी ने कहा, ‘हे उद्धव ! हमारा मन उन्हीं का अनुरागी है, हमें क्यों भुलाने की चेष्टा करते हो ? श्रीकृष्ण यदि निर्गुण ही हैं, तो—

किन वै गधन कियो सकटनि चढ़ि, सुफलक-सुत के संग ।  
 किन वै रजक लुटाइ विविध पट, पहिरे अपने अंग ॥  
 किन हति चाप निदरि गज माखो, किन वै मल मथि जाने ।  
 उग्रसेन वसुदेव देवकी, किन वै निगड़ हठि भाने ॥  
 तू का की है करत प्रशंसा, कौनै घोस पढायो ।  
 किन मातुल हति लयो जगत-जस, कौन मधुपुरी झायो ॥  
 माथे मोर मुकुट बन गुंजा, मुख मुरली धुनि बाजै ।  
 ‘सूरजदास’ जसोदा नंदन, गोकुल कहँ न बिराजै ॥

‘शकट में चढ़ कर अक्रूर के साथ जो मथुरा गये थे, वह कौन हैं ? धोबी को लूट कर जिन्होंने अपने अङ्गों पर नाना प्रकार के वस्त्र पहने थे, वह कौन हैं ? जिन्होंने धनुर्भङ्ग किया था और गज को पराजित कर मारा था, वह कौन हैं ? जिन्होंने मल्लों का प्राण-वध किया था, वह कौन हैं ? जिन्होंने धीरत्व प्रदर्शन कर उग्रसेन, वसुदेव तथा देवकी के पैर की बेड़ियाँ तोड़ी थीं, वह कौन हैं ? तुम किसकी प्रशंसा कर रहे हो ? किसने तुमको ब्रज में भेजा है ? किसने मामा को मार कर जगत् में यश पाया है ? किसने मथुरा की रत्ना की थी । किसके मस्तक पर मयूर-पुच्छ का मुकुट है और गले में घुँघुची

की माला है ? किसके मुख से मुरली की ध्वनि बजती है ? क्या यशोदानन्दन कभी गोकुल में नहीं रहे थे ?

श्रीकृष्ण का ब्रह्म बतानेवाले उद्धव के मुँह को बन्द कर देने-वाले ये करारे उत्तर भी कैसे लाजवाब हैं ? अजी ! यदि कृष्ण निर्गुण और निर्विकल्प हैं तो क्या ये बातें जो उनके सम्बन्ध में हमने स्वयं देखी-सुनी हैं—भूठी हैं ? क्या जिस रूप में हमने श्रीकृष्ण को देखा है, प्यार किया है—वह सब भूल-भुलैया था ?

गोपियों ने कहा—

जोग ठगौरी ब्रज न विकैहै ।

यह ब्योपार तिहारो ऊधो, पेसोई फिर जैहै ॥

जापै लै आये हो मधुकर, ताके उर न समैहै ।

दाख छाँड़ि कै कटुक निबोरी, को आपन मुँह खैहै ॥

मूरी के पातन के ( केना ? ) कोयना, को मुकुताहल दैहै ।

‘सूरदास’ प्रभु गुनहिं छाँड़ि कै, को निरगुन निरवैहै ॥

योग का धोखा ब्रज में न बिकेगा । उद्धव ! तुम्हारा यह सौदा बस बिना बिके ही लौट जायगा । हे मधुकर ! जिनके लिए यह लाये हो, उनके हृदय में इसके लिए स्थान नहीं । दाख छोड़ कर कौन स्वेच्छा से निबौड़ी खायेगा ? मूली के पत्तों के बदले में कौन मुक्ता-फल देगा ? सगुण को छोड़कर कौन निर्गुण के द्वारा अपना निर्वाह करेगा ?

राखो यह सब जोग अट-पटो, ऊधो पाइ परौं ।

कहँ रसरति कहाँ तनु सोधन, सुनि-सुनि लाज मरौं ॥

चंदन छाँड़ि बिभूति बतावत, यह दुख क्यों न जरौं ।

नासा कर गहि जोग सिखावत, बेसरि कहाँ धरौं ॥

सगुन सरूप रहत उर अन्तर, निरगुन कहा करौं ।

निसिदिन रसना रटत स्याम गुन, का करि जोग मरौं ॥

मुद्रा न्यास अंग-अंग भूसन, पतिव्रतते न टरौं ।

‘सूरदास’ यो ही व्रत मेरे, हरि मिलि नहिं बिछुरौं ॥

‘उद्धव ! हम तुम्हारे पैरों पड़ती हैं, योग की यह सब उत्पटांग बातें छोड़ दो । कहाँ मधुर रस का कार्यक्रम और कहाँ देहशुद्धि का विधान—यह सुनकर हम लज्जा से मरी जाती हैं । चन्दन छोड़कर देह पर भस्म लगाने को कहते हो, इस दुःख से क्यों न जल मरें ? हाथ से नाक पकड़ कर योग करने को कहते हो तो बेसर कहाँ रखें ? हृदय के अन्तर सगुण तथा सरूप रहते निर्गुण से क्या करना है ? जब हमारी जीभ दिन-रात श्याम के गुणों की व्याख्या कर रही है तब निर्गुण ब्रह्म का ध्यान कर क्यों मरें ? हमारे प्रत्येक अङ्ग पर आभूषण हैं ; मुद्रा तथा न्यास के लिए उन्हें उतारना पड़ेगा ; हम पतिव्रत से विच्युत न हो सकेंगी । यही हमारी प्रतिज्ञा है ; जब हरि को हमने ( साकार रूप में ) पाया है, तब उनके ( नयनाभिराम ) रूप को हृदय से हटा न सकेंगी ।’

उलटी रीति तिहारी ऊधो, सुनै सु ऐसी को है ।

अलप बयस अबला अहीरिसठ, तिनहिं जोग कत सोहै ॥

बूचिहि खुभी आंधरिहिं काजर, नकटी पहिरै बेसरि ।

मुँडली पटिया पारि सँवारै, कोढ़ी अंगहिं केसरि ॥

बहिरी सों पति मता करै तौ, तैसाइ उत्तर पावै ।

सो गति होइ सबै ताकी जो, ग्वारिनि जोग सिखावै ॥

सिखई कहत स्याम की बतियाँ, तुमको नाहीं दोसु ।

राज काज तुमतेँ न सरैगो, अपनी काया पोसु ॥

जेते भूलि सबै मारग मैं, इहाँ आनि कहा कहते ।

भली भई सुधि रही ‘सूर’ तौ, मोह-धार महँ बहते ॥

‘हे उद्धव ! तुम्हारी बताई रीति उलटी है । उसके अनुसार कौन चल सकती है ? हे बहकाने वाले ! जो तरुण अवस्था की

सुकुमारी ग्वालिन है उसके लिए भला कैसे योग शोभा दे सकता है ? जो कनकटी है वह कर्णफूल पहरेगी, जो अन्धी है वह काजल लगायेगी, जो नकटी है वह बेसर पहनेगी, जो मुँडली है वह माँग निकाल कर केस सँवारेगी और जो कोढ़िन है वह अंगों पर कुङ्कुम लेप करेगी—यह किस प्रकार से सम्भव हो सकता है ? यदि बहिरी के साथ उसका पति प्रेम—सम्भाषण करने लगे तो उसे उत्तर भी वैसा ही मिलता है । जो ग्वालिन को योग सिखाना चाहता है, उसकी भी दशा वैसी ही होती है । तुम्हारा कोई दोष नहीं । तुमने श्याम के पास जैसा सीखा है वैसा ही कहते हो । परन्तु तुमसे यह राज-काज नहीं चलने का, तुम किसी दूसरे उपाय से अपनी काया का पोषण करो । तुम रास्ते में सब भूल गये हो, तुम यहाँ आकर कुङ्क-का-कुङ्क कहते हो । अच्छा हुआ कि अभी तक तुम्हें होश है, नहीं तो तुम मोह की धारा में बह जाते ।’

हमरी गति पति कमलनैन लों, जोग सिखै ते राँडे ।

कहौ मधुप ! कैसे समाहिंगे, एक म्यान दो खाँडे ॥

काकी भूख गयी बयारि भखि, बिना दूध घृत माँडे ।

कहु षट्पद ! कैसे खैयतु है, हाथिनके सँग गाँडे ॥

जाकी कहूँ थाह नहिँ पैये, अगम अपार अगाधै ।

गिरिधरलाल ढूँढीले मुखपर, इतै बाँध को बाँधै ॥

हमारी गति तथा हमारे पति तो कमलनयन हैं । योग सिखना तो राँड़ ( विधवा ) का काम है । ( हमारे प्राणपति अजर-अमर हैं, हम कभी विधवा होने को हो नहीं । ) हे मधुकर ! तुम्हीं बताओ, एक म्यान में दो तलवारें कैसे समा सकती हैं ? दूध, घी, रोटी खाये बिना, केवल वायु-भक्षण से किसकी भूख मिटो है ? बताओ हाथों के साथ गेंडा कैसे खा सकता है ? जिसकी सोमा हो नहीं मिलती—जो अज्ञेय, अपार तथा अथाह

हैं—उन गिरिधरलाल के सुन्दर मुखको इतने बन्धनों के भीतर कौन आबद्ध करना चाहता है ?'

हमको हरि की कथा सुनाउ ।

अपनी ज्ञान कथा को ऊधो, मथुरा ही लै जाउ ॥

नागरि नारि भली समझेंगी, तेरो वचन बनाउ ।

पा लागों ऐसी इन बातनि, उनहीं जाइ रिझाउ ॥

सुनि पिय सखा स्याम सुंदर के, जो पै जिय सतिभाउ ।

तो बारक आतुर इन नैननि, वह मुख आनि दिखाउ ॥

जो कांउ कोटि जतन करै मधुकर, बिरहिन और सुभाउ ।

तौ सुन 'सूर' मीन को जल बिनु, नहिंन और उपाउ ॥

'हमसे तो हरि की बातें कहो । हे भ्रमर ! यह अपना ज्ञान विषयक व्याख्यान मथुरा को ले जाओ । वहाँ की नारियाँ तुम्हारी सजावटी बातें समझ सकेंगी । तुम्हारी इन सब बातों को दण्डवत करती हूँ, उन्हीं को जाकर इनसे सन्तुष्ट करो । हे श्याम सुन्दर के प्रिय सखा ! सुनो, यदि उनके साथ तुम्हारा इतना ही प्रेम है, तो हमारे इन आतुर नयनों को वह मुख लाकर दिखाओ । हे मधुकर ! यदि कोई मनुष्य करोड़ों चेष्टा करे, तो भी बिरहिणियों के स्वभाव का परिवर्तन नहीं कर सकता । जल के बिना मछली एक पल भी जी सकती है ? ठीक उसी प्रकार गोपियों के लिए भी अपने प्राणवल्लभ श्रीकृष्ण के बिना एक क्षण का जीवन दूभर है, असह्य है ।'

नैननि नन्दनंदन ध्यान ।

तहाँ लै उपदेस दीजे, जहाँ निर्गुन ज्ञान ॥

पानि पल्लव रेख गनि गनि, अवधि विविध विधान ।

इतै पर कहि कटुक वचननि, हते जैसे प्रान ॥

चंद्र कोटि प्रकास मुख, अवतंस कोटिक भान ।

कोटि मन्मथ वारि ढबिपर, निरखि दीजत दान ॥

भ्रुकुटि कोटि कोदंड रुचि, अवलोकननि संधान ।  
 कोटि वारिज वक्र नैन, कटाच्छ कोटिक वान ॥  
 मनि कंठहार, उदार उर, अतिसै बन्यो निर्मान ।  
 संख चक्र गदा धरे कर, पदुम सुधा निधान ॥  
 श्याम तनु पट पीत की छबि, करै कौन बखान ।  
 मनहुँ निरतंत नील घनमें, तड़ित देती मान ॥  
 रास-रसिक गुपाल मिलि मधु, अधर करती पान ।  
 सूर ऐसे श्याम बिनु को, यहाँ रत्नक आन ॥

हमारे लोचन सदा नन्दनन्दन का ध्यान करते रहते हैं । जहाँ के लोग निर्गुण का रहस्य समझ सकते हों, तुम्हारा यह उपदेश वहीं ले जाओ । श्याम ने अपनी उँगलियों की रेखाओं से गिनगिन कर अपने लौटने का समय नाना प्रकार से निर्दिष्ट कर दिया था । उस समय तो वह लौटे ही नहीं, तिस पर कठिन सन्देशा भेज कर मानो हमारा प्राण वध कर रहे हैं । श्याम के मुख पर कोटि-कोटि चन्द्रों की दीप्ति है और उनके भूषणों में कोटि-कोटि सूर्यों की चमक है । उनकी शोभा पर कोटि मन्मथ निष्ठावर किये जा सकते हैं । भ्रुकुटि में कोटि इन्द्र-धनुष की सुन्दरता है । आँख की चितवनी मानो शरनिक्षेप कर रही है । कोटि पद्मों के सौन्दर्ययुक्त नयनों के वङ्कित कटाक्ष मानों कोटि वाण हैं । उनके प्रशस्त वक्षःस्थल पर मणिमय कण्ठहार अनुपम शोभा देता है । करों में शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म धारण करते हुए वह सुधा को निधि प्रतीत होते हैं । श्याम शरीर पर पीतवर्ण के वस्त्रों की शोभा का वर्णन कौन कर सकता है ? मानों नील मेघ पर लय के साथ बिजली नृत्य कर रही है—मानो वह रास-रसिक गोपाल से मिल कर अधर-सुधा पान कर रही है । ऐसे श्याम के बिना यहाँ हमारा दूसरा कौन रत्नक हो सकता है ?

ऊधो तुम ब्रज की दसा विचारो ।

ता पाछे यह सिद्धि आपनी, जोग कथा बिस्तारो ॥

जा कारण तुम पठये माधौ, सो सोचो जिय माहीं ।

कितीक बीच बिरह परमारथ, जानत हौं किधौं नाहीं ॥

तुम परवीन चतुर कहियत हौं, संतन निकट रहत हौ ।

जल बूड़त अवलंब फेनको, फिरि फिरि कहा गहत हौ ॥

वह मुसुकानि मनोहर चितवन, कैसे उरते डारौं ।

जोग जुगति अरु मुकुति परमनिधि, वा मुरली पर वारौं ॥

जिहि उर कमल नैन जु बसत हैं, तिहि निरगुन क्यों आवैं ।

सूरदास सो भजन बहाऊं, जाहि दूसरो भावैं ॥

‘ उद्धव ! तुम पहले ब्रज की दशा पर तो विचार करो, पीछे अपनी इस सिद्धि और योग की बातों की व्याख्या करना । जिस उद्देश्य से माधव ने तुम्हें यहाँ भेजा है उसके सम्बन्ध में तुम एक बार अपने मनमें विचार कर देखो । तुम प्रवीण तथा चतुर कहे जाते हो और साधुओं की संगति करते हो । अतएव बिरह और परमार्थ में कितना अन्तर है, क्या तुम नहीं जानते ? जलमें डूबते हुए बार-बार फेन का सहारा क्यों लेते हो ? ( अब हमें नन्दनन्दन के मुख के ध्यानसे ही सन्तुष्ट रहना पड़ेगा ) । तुम बार-बार हमें किसका आश्रय लेने को कहते हो ? कैसे हम श्याम की मधुर मुसकान तथा मनोहर कटाक्ष को हृदय से हटावें । योग, युक्ति तथा श्रेष्ठ रत्न स्वरूप मुक्ति को हम श्याम की मुरली पर निष्ठावर करती हैं ? जिस हृदय में कमलनयन का वास है, उसमें निर्गुण का आना कैसे सम्भव है ? जिस भजन के द्वारा अन्य किसी वस्तु में अनुराग उत्पन्न होता हो, उसे हम यमुना में बहा देती हैं ।’

काहे को रोकत मारग सूधो ।

सुनहु मधुप निरगुन कंटकमय, राजपंथ क्यों रोंधो ?

कै तुम सिखै पठाये कुबिजा, कही स्यामघनजी धौं ।  
वेद पुरान स्मृति सब हूँ दौ, जुबतिन जोग कहूँ धौं ॥  
ताको कहा परेखो कीजै, जानत काँढ़ न दूधौ ।  
सूर मूर गयो अक्रूर लै, व्याज निबेरत ऊधौ ॥

‘ सुनो मधुप ! सरल पथ क्यों बन्द करते हो ? कण्टकमय निर्गुण के द्वारा, सगुण का प्रशस्त निष्कण्टक राजपथ क्यों रोकते हो ? क्या तुमको कुब्जा ने सिखा भेजा है, वा श्याम-घन ने ? वेद, पुराण तथा स्मृति-शास्त्र सब खाँज देखो, कहीं युषतियों के लिए भी योग-मार्ग की व्यवस्था है ? जो मट्टा तथा दूध का भेद नहीं जानता उसे विश्वास करने से क्या होगा ? मूलधन तो ले गया अक्रूर, अब सूद उगाहने को आये हैं उद्धव । परन्तु यहाँ तो दूसरे के लिए जगह ही नहीं रही ’ —

नाहिन रह्यो मनमहँ ठौर ।

नन्दनन्दन अकृत कैसे, आनिये उर और ॥

चलत चितवत, दिवस जागत, सुपन सोषत रात ।

हृदय तें वह स्याम मूरति, त्रिन न इत उत जात ॥

कहत कथा अनेक ऊधो, लोक लाज दिखात ।

कहा करौं तन प्रेम पूरन, घट न सिंधु समात ॥

स्याम गात सरोज आनन, ललित गति मृदु हास ।

सूर ऐसे रूप कारन, मरत लोचन प्यास ॥

‘ हमारे मन में स्थान ही नहीं है । नन्दनन्दन रहते हम दूसरे को हृदय में कैसे स्थान दें ? रास्ते में चलते हुए, दिन में जागते हुए और रात को सोते हुए स्वप्न में हम उन्हीं को देखती हैं । एक क्षण के लिए भी हमारे हृदय से श्याम मूर्ति इधर-उधर नहीं होती । लोक लाज दिखा कर ऊधो ! तुम बहुत-सी बातें कहते हो । पर क्या करें, हमारा देह प्रेम से पूर्ण है—घट के भीतर समुद्र नहीं समा सकता । देह जिनका श्याम वर्ण है, मुख

जिनका पद्म के सदृश, हास्य जिनका मृदु तथा चाल जिनकी ललित है—उनके ऐसे रूप के लिए ही हमारे नयन प्यास से मर रहे हैं।’

सुनिहै कथा कौन निरगुन की, रचि पचि बात बनावत ।

सगुन सुमेरु प्रगट देखियत, तुम तृन की ओट दुरावत ॥

‘तुम निर्गुण के विषय में जो सब बनावटी बातें कहते हो, कौन उन्हें सुनेगा ? सगुण रूप सुमेरु के समान सामने ही प्रकट हो रहा है, उसे तुम तृण की ओट में छिपा रखना चाहते हो ?’  
[ अर्थात् भगवान् की सगुण सत्ता चारों ओर लोक-लोचन के सामने उद्भासित है, तुम उस ज्वलन्त सत्ता का अस्वीकार कर व्यर्थ एक अनिर्दिष्ट तथा अबोध पत्र का अवलम्बन कर वाग्जाल विस्तार कर रहे हो । यही गोपियों की सार युक्ति है । ]

योग है जीवात्मा और परमात्मा का संयोग । केवल समाधि की अवस्था में ही यह संयोग सम्भव है । समाधि है चित्त-वृत्ति का निरोध, अर्थात् विषय से मन को हटा कर ऐसी अवस्था में लाना कि वह सम्पूर्णतया बाह्य-ज्ञान-शून्य हो जाय । चित्त-वृत्ति-निरोध की अवस्था प्राप्त करने के लिए कुछ क्रियाओं की आवश्यकता है, जिनमें प्रारम्भिक हैं देह-शुद्धि, आसन, मुद्रा, प्राणायाम, ध्यान, धारणा इत्यादि । गुण तीन हैं—सत्त्व, रज और तम । जिन में ये गुण नहीं हैं, वही निर्गुण है । निर्गुण परमात्मा विश्वब्रह्माण्ड में तथा सब जीवों में व्याप्त हैं । जो मनुष्य निर्गुण परमात्मा के उपासक हैं, वे ज्ञान मार्गावलम्बी कहे जाते हैं । जो याग-यज्ञादि के द्वारा भगवान् की उपासना करते हैं, वे कर्म मार्गावलम्बी हैं । पर कुछ मनुष्य प्रेम के द्वारा भगवान् को पाना चाहते हैं । वे भक्ति-मार्गावलम्बी हैं । भक्तिमार्गावलम्बी कहते हैं कि सृष्टि के लिए परमात्मा को सत्त्व, रज, तम गुणों का अवलम्बन करना पड़ता है, अर्थात् वह सगुण हो जाते हैं और अपने आपको दो भागों में

विभक्त कर लेते हैं—पुरुष तथा प्रकृति । प्रकृति और पुरुष नाना प्रकार से मिलित होकर इस विश्व में प्रकट होते हैं—कभी सत्त्व-गुण प्रबल होता है, कभी रजोगुण, कभी तमोगुण, कभी सत्त्व तथा रज दोनों, कभी रज तथा तम दोनों इत्यादि । जीवात्मा प्रकृति के अन्तर्गत है । जीवात्मा और परमात्मा के मिलन की विभिन्न अवस्थाओं का वर्णन वैष्णवगण श्रीकृष्ण और गोपियों के विहार के नाम से करते हैं ।

जोष परमात्मा से विच्छिन्न हो गया है । उसे फिर परमात्मा से मिलने की आकांक्षा है । ज्ञान मार्गी लोग सम्पूर्ण मिलन चाहते हैं, जिसे वे मुक्ति कहते हैं । भक्तिमार्गावलम्बीगण अर्थात् वैष्णवगण, मुक्ति के पक्षपाती नहीं हैं । वे भगवान् को साकार मानते हैं और निर्गुण ब्रह्म उनको खटकता है । वे परमात्मा में लीन होना नहीं चाहते । अर्थात् अनन्त काल तक भगवान् के धाम में रहते हुए श्रीकृष्ण भगवान् के दर्शन तथा उनकी सेवा करने के अभिलाषी हैं । यही है वैष्णवों का मोक्ष ।

सब कोई अन्त में भगवान् से मिलना चाहते हैं । किन्तु मिलन होना सहज नहीं—जन्म-जन्मान्तर व्यापी साधना आवश्यक है । तब तक जोष विरह व्यथा अनुभव करता है । अस्तु ।

उद्धव जी ब्रज में पहुँच कर गोपियों से कहने लगे कि तुम साकार भगवान् ( श्रीकृष्ण ) की उपासना ढ़ोड़ ज्ञान मार्ग का अवलम्बन कर समाधि के द्वारा निर्गुण ब्रह्म का ध्यान कर मुक्ति पाने की चेष्टा करो, क्योंकि ब्रह्म के निर्गुणत्व के ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं हो सकती ।\* गोपियों ने इसके उत्तर में कहा कि सगुण

\* पूरन ब्रह्म ध्यावो, त्रिगुन मिथ्या भेष ॥

मैं कहौं सो सत्य मानहु, त्रिगुन डारौ नास ।

पंच त्रय गुन सकल देही, जगत ऐसो भास ॥

भाव से भी श्रीभगवान् प्राप्त हो सकते हैं। हम भी योग करती हैं—साकार कृष्ण का ध्यान करते हुए।

हम तो ध्यान धरें निसि बासर, औरहि नवै न सीस।  
हिय में बसत निरंतर हमरे त्रिभुवनपति जगदीस ॥

ऊधो, जोग तबहिं तें जान्यो।

जा दिनतें सुफलक-सुत के सँग रथ ब्रजनाथ पलान्यो ॥  
ता दिनतें सब कोह मोह गयो, सुत-पति हेतु भुलान्यो।  
तजि माया संसार तर्क जिय, ब्रज बनिता बृज ठान्यो ॥  
नैन मूँदि मुख मौन रही धरि, तनु तप तेज सुखान्यो।  
नंदनंदन मुखली मुखपर धरि, उहै ध्यान उर आन्यो ॥  
सोइ रूप जोगी जेहि भूले, जो तुम जोग बखान्यो।  
ब्रह्माहू पचि मुए ध्यान करि अंत उनहिं पहिचान्यो ॥  
कहौ सुयोग कहा लै कीजै, निरगुन ही नहिं जान्यो।  
'सूर' उहै निज रूप स्याम को, है मन माँह समान्यो ॥

‘योग क्या है, यह बात तभी से हमारी जानी हुई है जब से ब्रजनाथ श्रकृष्ण ने अक्रूर के साथ जाने के लिये रथ सजाया था। उस दिन से हमारी सब स्नेह-ममता दूर हो गयी है—हम पति-पुत्र का प्रेम भूल गयी हैं। तभी से ब्रज की नारियों ने मन से संसार की चिन्ता हटा कर एकनिष्ठता से मानो संन्यास ले लिया है। (योग मार्ग की प्रणाली के सदृश प्रणाली अपनने-आप अनुष्ठित हो रही है।) आँखों को बन्द करते तथा मुख में मौन धारण करते हुए हमारी देह को विरह की आग ने सुखा डाला है।

ज्ञान बिनु नर मुक्ति नाहीं, यह विषय संसार।

रूप रेख न नाम कुल गुन, बरन और न सार ॥

मातु पितु कोउ नाहिं नारी, जगत मिथ्या लाइ।

‘सूर’ सुख दुख नाहिं जाके, भजो ताको जाइ ॥

हम मुरली-वदन नन्दनन्दन के रूप को हृदय से ध्यान कर रही हैं— वही रूप जिसे भूल कर योगिगण उस योग में निमग्न हैं जिसकी प्रशंसा तुम कर रहे हो । किन्तु ब्रह्मा भी निर्गुण का ध्यान करते-करते हार गये थे, तब उन्हें साकार ब्रह्म के दर्शन मिले थे । जब हम निर्गुण का स्वरूप ही नहीं जानती तो कहो किसका अवलम्बन कर योग किया जाय । हमारा अन्तस्तल तो श्याम की रूपमाधुरी से भरा है ।’

तब उद्धव जी की आंखें खुलीं, वे बोले—

अब अति चकितघ्न मन मेरो ।

आयो हों निरगुन उपदेशन, भयो सगुन को चेरो ॥

मैं कुछ ज्ञान कहाँ गीता को, तुमहि न पहरो नेरो ।

अति अज्ञान जानि कै अपनो, दूत भयो उनकेरो ॥

निज जन जनि इहाँ हरि पठयो, दीनों बोझ घनेरो ।

‘सूर’ मधुप फिरि चले मधुपुरी, बोरि जोग को बेरो ॥

‘अब मेरा मन अतिशय विस्मित है । मैं यहाँ आया था निर्गुण का उपदेश देने के लिए, किन्तु अब स्वयं हो गया सगुण-उपासक । मैंने तुम्हारे सामने कुछ गीता के\* ज्ञान की व्याख्या की है जो तुम्हें अच्छा नहीं लगा । मैं अपने-आपको अज्ञानी जानते हुए भी श्रीकृष्ण का दूत बन कर आया था, और श्रीकृष्ण भी अपना भक्त जान कर मुझे यहाँ भेजा था, पर मेरे सिर पर बड़ा भारी बोझ लाद दिया था । अब मैं योग का बेड़ा डुबाकर मथुरा लौटता हूँ ।’

---

\* यहाँ सूरदास जी ने कदाचित् भ्रम किया है । गीता का उपदेश भगवान् ने परिणत जीवन में अर्जुन को दिया था । हाँ, यह हो सकता है कि गीतोक्त ज्ञान का कुछ उपदेश भगवान् ने पहले ही उद्धव को दिया हो । उद्धव जी पहले स्वयं अद्वैतमार्गी शानी थे ।

गोपियों को योग मार्ग में ले जाकर निर्गुण की उपासना में प्रवृत्त करना असम्भव देख कर उद्धव जी मथुरा लौट गये। पहले ईश्वर की निर्गुण सत्ता तथा अद्वैतवाद में उनका अटल विश्वास था और अपने पाण्डित्य पर भी अभिमान था। उनका गर्व खर्व करने के अभिप्राय से श्रीकृष्ण ने उन्हें व्रज में भेजा था। गोपियों की भक्ति का परिचय पाकर उनका भी मन विचलित हो गया और वह ज्ञान मार्ग से भक्ति मार्ग के श्रेष्ठत्व का अनुभव करने लगे। वह मथुरा लौटे और श्रीकृष्ण के पास जाकर उन्होंने निवेदन किया—

कहाँ लौ कहिये व्रज की बात ।

सुनहु स्याम तुम विन उन लोगन, जैसे दिवस बिहात ॥

गोपी-ग्वाल गाय-गोसुत सब, मलिन बदन कृस गात ।

परम दीन जनु सिसिर हिमाहत, अंबुजगन विनु पात ॥

जो कोउ आवत देखि दूर तैं, सब पूछति कुसलात ।

चलन न देति प्रेम आतुर उर, कर चरनन लपटात ॥

पिक चातक बन बसन न पावै, वायस बलिहिं न खात ।

‘सूरज’ स्याम सँदेसन के डर, पथिक न वा मग जात ॥

‘व्रज की दशा का वर्णन कहाँ तक किया जाय? सुनो श्याम ! तुम्हारे बिना वहाँ के लोग कैसे समय काट रहे हैं। गोप, गोपी, गाय, बछड़े सभी का मुख म्लान है और देह बलशून्य। वे अत्यन्त कातर हैं, जैसे शिशिर में तुषार-पात के मारे कमल की पंखुड़ियाँ। यदि गोपियाँ किसी को दूर से आते देखती हैं, तो ( वह मथुरा से आ रहा है इस अनुमान से हृदय की व्याकुलता के कारण ) उसे रोकती हैं और उसके चरणों से लिपट जाती हैं। कोयल तथा पपीहा भी शान्ति से वन में बैठने नहीं पाते, न कौआ अपना खाद्य बलि खाता है। गोपियाँ मथुरा का समाचार पूछेंगी, इस डर से बटोहियों ने उस रास्ते से जाना छोड़ दिया है।’

माधवजू, मैं उत अति सचु पायो ।  
 अपना जानि सँदेस ब्याज करि, ब्रज जन मिलन पठायो ॥  
 कृमा करौ तो करौं बीनती, जो उत लखि हौं आयो ।  
 श्रीमुख ज्ञान-पंथ जो उचाखो, तिन पै कछु न सुहायो ॥  
 सकल निगम सिद्धांत जनम कर, उन मोहिं सहज सुनायो ।  
 नहिं श्रुति सेप महेस प्रजापति, जो रस गोपिन गायो ॥  
 कटुक कथा लागी मोहिं अपनी, उहि रस सिंधु समायो ।  
 उत तुम देखे और भाँति मैं, सकल तृपाहि बुझायो ॥  
 तुम्हरी अकथ कथा तुम जानो, हम जन नाहिं बसायो ॥  
 'सूर' स्याम सुंदर यह सुनि-सुनि, नैनन नोर बहायो ॥

‘हे माधव ! मैंने वहाँ ( ब्रज में ) बहुत सुख पाया । तुमने मुझे अपना मित्र समझ कर समाचार लेने के लिए ब्रज के लोगों के पास भेजा था । यदि कृमा करो तो मैं वहाँ जाकर जो कुछ देख आया हूँ, निवेदन करूँ । श्रीमुख से ज्ञान मार्ग की जो बातें बताई गई थीं, वह उन्हें तिलमात्र भी अच्छी नहीं लगीं । सारा जीवन वेद-चर्चा कर मैं जिस सिद्धान्त पर पहुँचा था, उसके बारे में उन्होंने सहज ही में खरी-खोटी सुनाई । इतना ही नहीं, जिस रस की उन्होंने व्याख्या की, न तो वह वेद में है, न शेष, महेश तथा ब्रह्मा को उसका पता चलता है । मेरी अपनी बातें ही मुझे बुरी लगीं—वे उनके रस-सिंधु में डूब गयीं । तुमने एक प्रकार से देखा, और मैंने दूसरे प्रकार से । मैं अपनी सब प्यास वहाँ से बुझा आया हूँ । तुम्हारी अविशेष बातों को तुम्हीं समझते हो, हम-जैसे लोगों की उनकी धारणा करने की शक्ति नहीं है । यह सुन कर श्यामसुन्दर के नेत्रों से वारि-धारा बहने लगी ।’

श्रीकृष्ण के मन में ब्रज की स्मृति जागरूक होकर उन्हें मर्म-पीड़ा देने लगी । व्यथित हृदय से वह बोले—

ऊधो, मोहिं ब्रज बिसरत नाहीं ।

बृन्दावन गोकुल तन आषट, सघन तृनन की छाहीं ॥

प्रात समय माता जसुमति, अरु नंद देखि सुख पावत ।

माखन रोटी दह्यो सजायो, अति हित साथ खवावत ॥

गोपी ग्वाल बाल सँग खेलत, सब दिन हँसत सिरात ।

‘सूरदास’ धनि धनि ब्रजवासी, जिनसों हँसत ब्रजनाथ ॥

‘उद्धव ! मुझसे ब्रज भूला नहीं जाता । वृन्दावन से गोकुल की ओर आने में क्या ही सघन तृण की छाया है ! प्रातःकाल में उठ कर माता यशोमति तथा पिता नन्द को देखकर क्या ही सुख मिलता था ! माता मखन, रोटी और सजाव दही लाकर स्नेह के साथ खिलाती थीं । गोपियों तथा गोपबालकों के साथ खेलने में सारा दिन हँसते हुए कट जाता था । सूरदास कहते हैं, धन्य हैं ब्रजवासीगण जिनसे मिलकर ब्रजनाथ हँसते थे ।’

इस प्रकार हम देखते हैं कि भक्त शिरोमणि सूरदास जी ने ‘भ्रमर-गीत’ में प्रेम परक साकार-उपासना की श्रेष्ठता एक बहुत ही विशद रूप में तथा अत्यन्त मनोवैज्ञानिक ढंग से निर्धारित की है । सूरदास के समय ज्ञानमार्गियों के कुछ सम्प्रदाय भक्ति का तीव्र विरोध करते हुए ‘अहं ब्रह्मास्मि’ का प्रचार कर रहे थे । बहुतों ने यह देखकर कि भले ही बिना कुछ किये-दिये ब्रह्म हाथ लग रहा है, धड़ल्ले के साथ राम और कृष्ण का ही नहीं अपितु समस्त कर्मकाण्ड तथा भक्ति का खण्डन प्रारम्भ कर दिया था । समाज में पाखण्ड का प्रचार बढ़ा, साथ ही जो-न-सो अनधिकारी पुरुष भी आँख मूँद कर आसन मारे ब्रह्म चिन्तन का दिखौवा ध्यान करने लगा । बाह्य समाधि ही साधना की पहली सोढ़ी समझी जाने लगी और लोक धर्म से पिण्ड छुड़ा कर ‘विरक्त’ बनना ही परम पुरुषार्थ समझा जाने लगा । ज्ञान के इन दिखौवे उपासकों को ही लक्ष्य कर गोस्वामी तुलसीदास जी ने डाँटा था—

हम लखि, हमहिं, हमार लखि, हम हमार के बीच ।

‘तुलसी’ अलखहिं का लखै, राम नाम जपु नीच ॥

सूरदासजी ने इतने कड़े शब्दों में तो इन ज्ञानवादियों का खण्डन नहीं किया परन्तु बड़े ही नम्र शब्दों में उन्हें विस्तार के साथ समझा दिया कि साधना के क्षेत्र में मन को कहीं टिकाने की आवश्यकता है, और यह मन शील, शक्ति और सौन्दर्य के परम निधान भगवान् श्रीकृष्ण में ही भली भाँति जम सकता है। इससे दो बातें होंगी—एक तो मन संसार के विषयों से हटता जायगा और दूसरे भगवान् के चरणों में रमते-रमते अभ्यास द्वारा सर्वत्र श्रीकृष्ण-ही-कृष्ण देखने लगेंगे। योग का चरम उद्देश्य भी यही है। सर्वत्र सर्वदा ब्रह्म की अनन्यता का अनुभव करने की आवश्यकता है। ‘भ्रमर-गीत’ भक्ति की सर्वोत्कृष्टता तथा विरह में प्रेमातिरेक द्वारा भक्ति-विह्वलता के चित्रण में विश्व-साहित्य में अनुपम अनमोल ग्रन्थ हैं।

---

## सूर-साहित्य में शान्त-रस

महात्मा सूरदास जी के शान्त-रस के पद 'विनय' नाम से प्रसिद्ध हैं। विनय-शब्द का अर्थ है आत्म-निवेदन अर्थात् भगवान् के पास दैन्य-प्रकाश तथा कृपा-भिक्षा करना। मानव-हृदय जब संसार-चक्र के निष्पेपण से कातर हो पड़ता है—जब वह समझता है कि उसके लिए अपनी क्षीण शक्ति पर निर्भर करना असम्भव है, तब वह दूसरों की सहायता की आवश्यकता का अनुभव करता है। वह ऐसी एक शक्ति की शरण लेना चाहता है, जो उसके व्यथित चित्त को शान्ति दे सके और उसके अभावों की पूर्ति कर सके। वह अपने किए के अनुताप से दग्ध होता रहता है और उस शक्ति के निकट अकपट चित्त से जीवन के भ्रम-प्रमादों को उद्घाटित कर अनुतप्त हृदय से अपने कृत अपराधों के लिए पुनः पुनः क्षमा-भिक्षा माँगता हुआ प्रार्थना करता है कि उसकी ऐसी मति हो कि वह फिर ऐसे अपराधों में लिप्त न हो सके। वह अपने देवता को निरन्तर पुकारता है और उस देवता के अतिरिक्त दूसरे किसी का प्रसङ्ग उसे अच्छा नहीं लगता।

विनय वा आत्म-निवेदन ही जीवात्मा और परमात्मा के संयोग का प्रधान उपाय है। आत्म-निवेदन तथा प्रार्थना के द्वारा ही जीव ईश्वर का सान्निध्य प्राप्त करता है। अपनी हीनता का ज्ञान न होने से जीव पारमार्थिक उन्नति प्राप्त नहीं कर सकता।

सूर-सागर में विनय के पद सर्वत्र छिंटे हुए हैं। ये सब पद अति सरल भाषा में लिखित तथा अलङ्कार-वर्जित हैं। हृदय में जब तीव्र आवेग उत्पन्न होता है, तब उसे व्यक्त करने के लिए

आडम्बर की आवश्यकता नहीं होती। सूरदास का जो कुछ कहने का था उसे उन्होंने अकपट चित्त से, तथा प्रत्यक्ष और स्पष्ट रूप में व्यक्त किया है। विनय के इन पदों में, श्रीकृष्ण के प्रति सूरदास की अकपट तथा अटल भक्ति प्रकाशित हुई है। निर्गुण की उपासना प्रायः किसी के लिए सम्भव नहीं। जिनका किसी प्रकार का गुण नहीं, किसी प्रकार का रूप नहीं—जो अज्ञेय हैं—उनकी उपासना साधारण लोगों के लिए असम्भव है। सूरदास ने भगवान को कृष्ण-रूप में अनुभव कर, उनकी विभिन्न लीलाओं का वर्णन किया है। इसी से उन्होंने कहा है—

अविगत गति कछु कहत न आवै ।

ज्यों गूँगे मीठे फल के रस, अंतरगत ही भावै ।

परम स्वादु सब ही जू निरंतर, अमित तोष उपजावै ।

मन बानी को अगम अगोचर, सो जानै जो पावै ।

रूपरेख गुन जाति जुगुति बिनु, निरालंब मन चकृत धावै ।

सब विधि अगम बिचारहिं ताते, सूर सगुन लीला पद गावै ॥

“ जो अज्ञेय हैं उनके विषय में कुछ कहा नहीं जा सकता, जैसे मीठे फल के रसोपभोग का आनन्द गूँगे व्यक्ति के मन में ही रह जाता है। जो सभी समय मधुर हैं—जो असीम आनन्द उत्पन्न करते हैं—जो मन तथा वाक्य से अलभ्य हैं—उन्हें जिसने पाया है वही जानता है, दूसरे नहीं। निर्गुण ब्रह्म के रूप, सीमा, गुण, उत्पत्ति तथा स्वभाव का भेद न पाकर साधारण मनुष्यों का मन आधारहीन अवस्था में घबराता फिरता है। ऐसे ब्रह्म सब प्रकार से अलभ्य हैं इस विचार से मैं उन्हें सगुण मानते हुए उनके सगुण स्वरूप की लीला-विषयक पद रच कर गाने में प्रवृत्त हुआ हूँ ।”

अतएव कहा जा सकता है कि सूरदास परमात्मा के निर्गुण  
भ०—८

स्वरूप पर अविश्वासी नहीं थे । संसार की अनित्यता के विषय में सूरदास कहते हैं—

हरि बिनु कोउ काम न आयो ।

यह माया झूठी प्रपंच लागि, रतन सों जनम गँवायो ।\*  
कंचन कलस बिचित्र चित्र करि, रचि पचि भवन बनायो ।  
तामें तें तेहि छिन ही काढ्यो, पल भरि रहन न पायो ।  
तेरे संग जरौंगी यह कहि, त्रिया धूति धन खायो ।  
चलत रही चित चोरि मोरि मुख, एक न पग पहुँचायो ।  
बोलि-बोलि सुत स्वजन मित्रजन, लोना सो जिहि भायो ।  
पखो काज जब अंत की बिरियाँ, तिन हो आनि बँधायो ।  
आसा करि-करि जननी जायो, कोटिक लाड़ लड़ायो ।  
तेरि लयो कटिहू को डोरा, तापर बदन जरायो ।†  
कोटि जनम भ्रमि-भ्रमि हम हास्यो, हरिपद चित न लगायो ।  
और पतित तुम बहुत उधारे, सूर कहा बिसरायो ।‡

“ हरि के बिना कोई वस्तु भी काम की न हुई । माया के द्वारा रचित इस अवास्तव संसार को सत्य मानकर मैंने रत्न के समान मूल्यवान् जीवन को व्यर्थ बिताया । सोने के बेलबूटे घाले कँगूरों से सज्जित भवन अति यत्न से बनवाया, किन्तु उसमें से तत्काल निकाला गया, क्षणमात्र भी रहने न पाया ।

\* यो संसार सकल जग झूठो, झूठो कुलरा नाती ।

—मीराबाई

† मात पिता औ कटुम्ब कबीलो, सब मतलब गरजी ।

—मीराबाई

‡ सुन लीजै बिनती मोरी, मैं सरन गही प्रभु तोरी ।

तुम तो पतित अनेक उधारे, भवसागर से तारे ॥

—मीराबाई

“ मैं तुम्हारे साथ ही जलूँगो ” यह कह कर धूर्त्ता पत्नी ने धन खाया, किन्तु मेरे चलने के समय विमुख होकर अपने आपको मेरी दृष्टि से बचा रखला और एक पग भी मेरा साथ न दिया । “ मैं पुत्र हूँ, मैं आत्मीय, मैं मित्र ” यह कहते हुए जिसको जो कुछ अच्छा लगा, वही ले गया, किन्तु जब अन्त समय का काम पड़ा, तब उन्होंने आकर मुझे बाँधा । बहुत आशा के साथ माता पुत्र जनी थी और लाड़-प्यार से उसका पालन-पोषण किया था । किन्तु उसी माता की कमर का डोरा पुत्र ने काट लिया और उसके मुख को जलाया । कोटि जन्म भ्रमण कर मैं हार मान गया, हरि के चरणों पर मन न लगा सका । हे पतित-पावन, तुमने अनेक पतितों का उद्धार किया है, तुम सूर को क्यों भूल गए हो ?”

अपने किए पर सूरदास का पश्चात्ताप—

( १ ) थोरे जीवन भयो तनु भारो ।

कियो न संत समागम कबहूँ, लियो न नाम तुम्हारो ॥

अति उन्मत्त निरंकुस मैगल, निसिदिन रहे असोच ॥\*

काम क्रोध मद लोभ मोह बस, रहे सदा अपसोच ।

महा मोह अज्ञान तिमिर में, मगन भए सुख जानि ॥

तैलक वृष ज्यों भ्रम्यो भ्रमहिं भ्रम, भज्यो न सारंग पानि ।

और कहाँ लगि कहाँ कृपानिधि, या तन के कृत काज ।

सूर पतित तुम पतित-उधारन, गहौ बिरद की लाज ॥

“ थोड़ी ही आयु में मेरा शरीर असहनीय हो गया है ।

मैंने न कभी साधु-संग किया, न तुम्हारा ( भगवान् का ) नाम ही लिया । बाधा-हीन अति उन्मत्त हाथी के सदृश दिन रात अशिवेकी रह गया । काम, क्रोध, लोभ, मद तथा मोह के

---

\* यो मन मेरो बड़ा हरामी, ज्यूँ मद मातो हाथी ।

—मीराबाई

वशवर्ती होकर सदा मन्द चिन्ताओं में निमग्न रहा । कोल्हू के बैल की तरह एक भ्रम से दूसरे भ्रम में पड़ते हुए मैं चक्कर खाता गया; कमल-कर श्याम-सुन्दर का भजन नहीं किया । हे दयामय, इस देह के कृत-कर्मों की बात कितनी कहूँ ? सूरदास पतित है और तुम पतितों के उद्धार करने वाले हो, उसे तुम अपने आश्रय में लेलो । देखना तुम्हारा ( पतित-पावन ) नाम लज्जा न पावे ( सार्थक हो—उसमें कलङ्क-स्पर्श न हो ) ।”

(२) भगति कब करिहैं जनम सिरानो ।

कोटि जतन कीने माया को, तोउ न मूढ़ अग्रानो ।  
बालापन खेलत ही खोयो, तरुन भए गरबानो । \*  
काम किरोध लोभ के बल रहि चेत्यो नहीं अग्रानो ।  
वृद्ध भए कफ कंठ बिरोध्यो, सिर धुनि-धुनि पड़ितानो ।  
सूर स्याम के नेक बिलोकत, भवनिधि जाय तिरानो ॥

“ भक्ति अब कब करूँ, जीवन का तो अन्त हो चला । माया ( वासना ) की कोटि प्रकार से सेवा की, तो भी उसकी तृप्ति न हुई । बालपन खेल में नष्ट किया, तरुणावस्था में अहङ्कार से मत्त रहा । काम, क्रोध तथा लोभ के वशीभूत हो जाने के कारण मुझे चेतना न हुई । वृद्धावस्था में अब कफ ने कण्ठरोध किया

\* आध जनम हम निन्दे गर्वौलूँ  
जरा शिशु कति दिन गेला ॥  
निधुबने रमणी रस संगे मातलूँ  
तोहे भजब कौन बेला ॥

—विद्यापति

बालापन सब खेल गँवाया, तरुन भयो जब रूप घना ।  
वृद्ध भयो जब अलस उपज्यो, माया मोह भयो मगना ॥

—मीराबाई

है—सिर कूट-कूट कर पक़ताता हूँ। श्याम के अल्पमात्र कटाक्ष से ही भव-समुद्र पार किया जा सकता है।”

(३) मो सम कौन कुटिल खल कामी ।

जिन तनु दियो ताहि विसरायो, पेसो नौन हरामी । \*  
भरि-भरि उदर विषय को धाव्यौ, जैसे सूकर ग्रामी ।  
हरिजन क़ाड़ि हरी विमुखन की, निसिदिन करत गुलामी ।  
पापी कौन बड़ो है मो तें, सब पतितन में नामी ।  
सूर पतित को ठौर कहाँ है, सुनिष श्रोपति स्वामी ।

“मेरे समान कुटिल, खल तथा कामी कौन है ? मैं पेसा अकृतज्ञ हूँ कि जिन्होंने मुझे यह देह दो है, उन्हें भी भूल गया। ग्राम्य सूकर की नाई मैंने उदर भर-भर के विषय-भोग किया। हरि-भक्तों को क़ाड़ के मैं दिवानिशि हरि-विमुखों का दासत्व कर रहा हूँ। मुझसे बड़ा पापी और कौन है ? मैं सब पापियों में प्रसिद्ध हूँ। हे स्वामी श्रोपति ( नारायण ), सुना, ( तुम्हारे बिना ) पतितों का स्थान कहाँ है ?”

(४) रे मन मूरख जनम गँवायो ।

करि अभिमान विषय-रस राँच्यो, श्याम सरन नहि आयो ।  
यह संसार फूल सेमर को, सुंदर देखि भुलायो ।  
चाखन लाग्यो रुई गई उड़ि, हाथ कछू नहि आयो ।  
कहा भयो अब के मन सोचे, पहिले नहि कमायो ।  
कहत सूर भगवंत भजन बिनु, सिर धुनि धुनि पक़ितायो ॥

“रे मेरा मूढ़ मन, तू ने इस जन्म को बूझा खा दिया। गर्वित होके विषय के आनन्द में अनुरक्त होकर तू ने श्यामसुन्दर का आश्रय न लिया। यह संसार सेमर के फूल के सदृश है—तू इसके सौन्दर्य को देखके लोभित हो गया था ( वास्तव में इसमें कोई

---

\* जाको रचत मास दस लागे, ताहि न सुमिरो एक छिना ॥

—मीराबाई

लोभनीय वा उपयोगी वस्तु नहीं है ) । तू इसे खाने लगा, किन्तु इसमें खाने के योग्य कोई पदार्थ तो मिला ही नहीं, प्रत्युत इसमें से रूई उड़ गई, अर्थात् इसमें तेरी आकांक्षा को निवृत्त करने की कोई वस्तु न मिली । रे मन, अब शोक करने से क्या होगा, तू ने तो अबसे पहले कुछ साधना नहीं की । सूरदास कहते हैं कि भगवान् के भजन के बिना केवल सिर पटक-पटक कर पकृताना है ।”

सूरदास का भगवान् पर निर्भर—

करे गोपाल के सब होय ।

जे अपने पुरुसारथ मानै, अति ही भूडो सोय ।

साधन मंत्र जंत्र उद्यम बल, ये सब राखै धोय ।

जो कुछ लिखि राख्यो नन्दनन्दन, मेटि सकै न कोय ।

दुख सुख लाभ अलाभ सहज तुम, कतहि मरत हो रोय ।

सूरदास स्वामी करुणामय, श्याम चरन मन पोय ॥

“ गोपाल जो कुछ करते हैं वही होता है । जो कहता है कि मनुष्य अपनी स्वाधीन चेष्टा से सब काम सम्पन्न कर सकता है, वह अतिशय मिथ्या-वादी है । साधना, मन्त्र, तन्त्र, उद्यम, बल ये सब व्यर्थ हैं । नन्दनन्दन ( श्रीकृष्ण ) ने जो कुछ लिख रक्खा है, उसे कोई नहीं मिटा सकता । सुख, दुःख, लाभ, हानि—ये सब अवश्य होने वाले हैं, तुम क्यों रो-रो कर मरते हो ? सूरदास के स्वामी करुणामय हैं, उनके चरणों में अपना मन प्रविष्ट कराओ ।

सूरदास के उपदेश—

(१) जनम जनम जब जब जिहि जिहि जुग जहाँ जहाँ जन जाइ ।

तहाँ तहाँ हरि चरन कमल रत जो दूढ़ होय रहाइ ॥

स्वधन सुजस सारंग नाद बिधि, चातक बिधि सुख नाम ।

नैन चकोर संत संतति ससि, करि अर्चन अभिराम ॥

सुमति स्वरूप सचै सर घालौ, उर अंबुज अनुराग ।  
नित प्रति अलि जिमि गुंज मनोहर, आवत प्रेम पराग ॥  
औरौ सकल सुकृत श्रीपति हित, तन मन रहत सुप्रीति ।  
नाक निरय सुख दुख न सूर प्रभु, जिहिके भजन प्रतीति ॥

“जन्म जन्मान्तर में, जिस-जिस युग में जहाँ-जहाँ मनुष्य जन्म ग्रहण करता है वहाँ-वहाँ जो कोई हरि पाद-पद्म में दृढ़ता से लगा रहता है, मृग का कान जैसे बधिक के सङ्गीत के प्रति आकृष्ट होता है, उसी प्रकार जिसका कान भगवान् की लीला-कथा सुनने के निमित्त व्यग्र होता है—पपीहा जैसे जलद को निरन्तर पुकारता रहता है, उसी प्रकार जो मनुष्य सदा मुख से हरि का नाम उच्चारण करता रहता है—चकोर का नयन जैसे चन्द्रमा का प्रेमी है, उसी प्रकार जिसका मन साधु संग करने को उत्सुक रहता है, (उससे मैं कहता हूँ कि तुम) श्याम-सुन्दर की उपासना करो अपनी सुमति-रूप वाण—हृदय-कमल की प्रीति सत्य-स्वरूप (भगवान्) पर चलाओ (अर्पण करो)। तुम भ्रमर की भाँति कोमल मधुर स्वर से भगवान् का कीर्तन करो, जिससे प्रेम-रूपी पुष्प-रज मिले। और सब पुण्य-कार्यों का फल तन मन तथा प्रीति से नारायण को अर्पित करो। हे भगवान्, भजन में जिसका अनुराग है, वह स्वर्ग, नरक, सुख, दुःख का अतीत है।

श्री हरि रस कबहुँ तो लहिए ।

गए सोच आए नहिँ आनँद, ऐसो मारग गहिए ।  
कोमल बचन दीनता सब सों, सदा अनंदित रहिए ।  
बाद विवाद हर्ष आतुरता, इतो दंड जिय सहिए ।  
ऐसी जो आवै या मन में, यह सुख कहाँलौ कहिए ।  
अग्रसिद्धि नवनिद्धि सूर प्रभु, पहुँचै जो कछु चहिए ।

कभी-कभी तो हरि-भजन का आनन्द पाने की चेष्टा करो ।  
हानि होने से दुःख नहीं होता, लाभ होने से भी आनन्द नहीं

होता, \* ऐसा मार्ग ग्रहण करो ( अर्थात् सुख दुःख के अतीत हो जाओ ) । नष्ट होकर सब से मिठी बातें कहो और मन को सदा आनन्द से भरा रखो । तर्क, कलह, हर्ष, विषाद इत्यादि भावों का दमन कर मन को निगृहीत करो । जब मन में इस प्रकार की प्रवृत्ति आती है, तब उस अवस्था का आनन्द कहाँ तक कहा जाय ? उस समय तो अष्टसिद्धि, नवनिधि आदि समस्त अपेक्षित वस्तुओं को हस्तामलक ही समझनी चाहिए ।

ब्रज के प्रति सूरदास का अनुराग—

(१) कहाँ सुख ब्रज को सौँ संसार ।

कहाँ सुखद बंसीबट जमुना, यह मन सदा विचार ॥

कहाँ बन धाम कहाँ राधा सँग, कहाँ संग ब्रज बाम ।

कहाँ रसरास बीच अंतर सुख, कहाँ नारि तनु ताम ॥

कहाँ लता तरु तरु प्रति भूलनि, कुंज कुंज बनधाम ।

कहाँ बिरह सुख बिनु गोपिन सँग, सूर स्याम मम काम ॥

ब्रज का सा आनन्द संसार में कहाँ मिल सकता है ? मेरा मन सदा विचार करता रहता है कि ऐसा आनन्द देने वाला बंसीबट ( जिसके नीचे रह-कर कृष्ण भगवान् बाँसुरी बजाते थे ) वा ऐसी आनन्द देनेवाली यमुना कहाँ रह सकती है ? कहाँ ऐसी घनशोभा है ? कहाँ ऐसा स्थान है जहाँ जाने से श्रीकृष्ण के साथ राधा तथा ब्रजाङ्गनाओं के संग का स्मरण होता हो ? कहाँ

\* सुखदुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः ।

वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते ॥

— गीता २-५६

यः सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत् प्राप्य शुभाशुभम् ।

नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥

— गीता २-५७

ऐसा स्थान है जहाँ जाने से भगवान् की रासलीला के आनन्द का तथा ब्रज-धनिताओं की व्याकुलता का स्मरण होते हुए आत्मानन्द अनुभूत होता हो ? कहाँ ऐसा स्थान है जहाँ प्रत्येक तरुलता से लटकते हुए भूलों का तथा वनमध्यस्थ कुंजों का स्मरण होता हो ? कहाँ ऐसा स्थान है जहाँ जाने से मेरी कामना को वस्तु श्यामसुन्दर से बिछुड़ो हुई गोपियों की विरह-व्यथा का स्मरण होते हुए प्रेमानन्द अनुभूत होता हो ?

(२) सेहि बसिए ब्रज की बीथनि ।

साधुनि के पनवारे चुनि चुनि, उदरजु भरिए सीतनि ।

पैड़े में के बसन बीनि तन, छाया परम पुनीतनि ।

कंज-कुंज तर लोटि लोटि रचि, रज लगौ रंगीतनि ।

निसिदिन निरखि जसादानंदन, और जमुन जल पीतनि ॥

दरसन सूर होत तन पावन, दरस न मिलत अतीतनि ॥

इसी प्रकार से ब्रज की गलियों में ठहरियो। साधुओं की उच्छिष्ट पत्तलों से अन्न-कण चुन चुन के अपना पेट भर लीजियो। शरीर को ढकने के लिए फटे-पुराने वस्त्र-खण्डों को सड़कों से उठा लीजियो और वृत्तों को परम पवित्र छाया में टिकियो। इस उस कुंज के नीचे अनुराग से लोट के, वहाँ की धूल लगाकर अपने तनिया (लँगौट) रंग लीजियो। रातदिन यशोदानन्दन श्रीकृष्ण की मूर्ति के दर्शन करते रहियो और जमुना का जल पीजियो। उनके दर्शनों के द्वारा शरीर पवित्र होता है, किन्तु घोरराग (भक्तिहीन) व्यक्तियों को उनके दर्शन नहीं मिलते।

उपसंहार में हरि-भक्ति-विषयक एक अति सरल पद उद्धृत किया जाता है—

हरि हरि हरि हरि सुमिरन करौ। हरि चरनारविंद उर धरौ ॥

हरि की कथा होइ जब जहाँ। गंगा हू चलि आवैं तहाँ ॥

जमुना सिंधु सुरसुती आवै । गोदावरी बिलंब न लावै ॥  
सब तीर्थन को वासा तहाँ । सूर हरि \* कथा होवै जहाँ ।

---



---

\* तत्रैव गङ्गा यमुना च तत्र, गोदावारीसिन्धुसरस्वती च ।  
सर्वाणि तीर्थानि वसन्ति तत्र, यत्राच्युतोदार-कथा-प्रसङ्गः ॥

—पद्मपुराण ।

उपसंहार

## सूरदास का काव्य और सिद्धांत

भक्त-शिरोमणि सूरदास 'सूरसागर' काव्य में कुसुम-सदृश असंख्य छोटे-छोटे हृदयहारी पदों को गँथकर श्रीकृष्ण की बाल्य-लीला का एक अपूर्व हार हमारे उपभोग के लिए रख गए हैं। उस हार के वात्सल्य, सख्य, मधुर (शृंगार) और शांत रसों का जो परिमल आज चार सौ वर्षों से दिगंत-पर्यंत परिव्याप्त है, उसकी माधुरी कदापि घटनेवाली नहीं, वह सदैव हमारे मानस को परितृप्त करती रहेगी। सूरदास ने यशोदा-देवी के मातृ-स्नेह का आलेख्य इस सूक्ष्मता तथा निपुणता से चित्रित किया है कि उसे देखकर नंद-रानी और गोपाल हमारे नेत्रों के सामने सजीव प्रतीत होते हैं। सूरदास के शिल्प का यह निदर्शन सौंदर्य का एक स्थायी आदर्श बना हुआ है। मानव-जीवन का एक और प्रबल आवेग है। वह है नर-नारियों का पारस्परिक आकर्षण। इसके चित्रण में भी सूरदास ने असाधारण दक्षता दिखाई है। नायक-नायिका के रूप-वर्णन में और उनके तीव्र आवेगमय मनोभावों के विश्लेषण में भी सूरदास ने असीम पारदर्शिता दिखाई है।

स्त्री-पुरुषों के प्रेम को अभिव्यक्ति में नाना वैचित्र्यों का उद्भव होता है, जो शृंगार रस के अंतर्गत हैं। शृंगार-रस नाक सिकोड़ने की वस्तु नहीं—केवल इतनी ही सतर्कता आवश्यक है कि वह श्लीलता की सीमा का उल्लंघन न करे। भरत मुनि ने अपने नाट्य-शास्त्र में लिखा है—“यत्किञ्चित् लोके मेध्यं सुन्दरं तत्सर्वं शृङ्गाररसेनोपमीयते।” अर्थात् मानव-समाज में जो कुछ पवित्र तथा सुंदर है, उसकी तुलना के लिए शृंगार रस का उपयोग किया जाता है।

रस किसे कहते हैं? किसी वस्तु के आस्वादन में जिस आनन्द का अनुभव होता है वही 'रस' है। श्रुति कहती है—  
“आनन्दाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते, आनन्देन जातानि जीवन्ति, आनन्देन प्रयान्त्यभिसंविशन्ति।” अर्थात् आनन्द से ही सब भूतों की उत्पत्ति होती है, आनन्द में ही वे जोषित रहते हैं, और ध्वंस को पाकर वे आनन्द में ही पुनः प्रवेश करते हैं।

अतएव सृष्टि के आदि, मध्य और अंत में—सब समय—आनन्द विद्यमान है। 'आनन्द' परमात्मा का एक स्वरूप है। जिसका स्वरूप ही आनन्द है उसके द्वारा आनन्द का अनुभव कैसे संभव है? आनन्द के निमित्त उसको किसी पृथक् सत्ता की आवश्यकता होती है। अतएव आनन्द-स्वरूप परमात्मा ने इच्छा की—“एकोऽहं बहु स्याम्—मैं अकेला हूँ, अनेक हो जाऊँ।” यही कारण उनके सगुण-भाव धारण करने का है। आनन्दानुभव के निमित्त ही उन्होंने विश्व की सृष्टि की है। 'बहु' न होने से विलास क्योंकर हो सकता है? आनन्दानुभव के लिए ही परमात्मा और जीवात्मा का भेद-भाव रक्खा गया है<sup>१</sup>। 'परमात्मा' पुरुष हैं और 'जीवात्मा' प्रकृति। प्रकृति ब्रह्म में ही विद्यमान रहती है। जो वस्तु भीतर थी उसका बहिर्विकास-मात्र हुआ; क्योंकि अभाव से भाव की उत्पत्ति नहीं हो सकती।

जीवात्मा परमात्मा में आत्म-समर्पण करना चाहता है, और भेदात्मक आवरण (माया) को न हटाकर<sup>२</sup> परमात्मा की

१—“गोकुल जनम लियो सुख कारन, गोपिन मिलि सुख भोगूँ।”

२—“प्रकृति पुरुष एकै करि जानहुं, बातनि भेद बतायो।

जल थल जहाँ तहाँ तुम बिनु नहि, भेद उपनिषद गायो।

ढे तनु, जीव एक, हम तुम दोट, सुख कारन उपजायो ॥”

३—ईश्वर हैं शुद्ध चैतन्य और जीव अशानावृत चैतन्य। जीव,

अनुभूति के द्वारा आनन्द में मग्न रहने का अभिलाषी है। इस आकांक्षा को कार्य में परिणत करने के लिए जिस उपाय का अवलंबन किया जाता है उसका नाम है 'साधना'। भिन्न-भिन्न व्यक्तियों वा सम्प्रदायों की साधना-प्रणाली भिन्न-भिन्न हैं। जो लोग साधना के मार्ग में अधिक अग्रसर हुए हैं, वे योग तथा समाधि के द्वारा भगवान् को पाने की चेष्टा करते हैं। किन्तु यह प्रणाली साधारण जनों के लिए बहुत कठिन है। यह शुष्क तथा नीरस है। मनुष्य आनन्द चाहता है। भगवान् को 'कर्म-हीन और निरवच्छिन्न ज्ञान का स्वरूप' कल्पित करते हुए उनमें अपने-आपको विलीन करने से मनुष्य को संतोष नहीं मिलता। साधारण मनुष्य स्थूल तथा सरस भाव से भगवान् को प्रेम अर्पित करना चाहता है।<sup>१</sup>

भगवान् के प्रति भक्त के प्रेम को सूक्तियों ने मानवीय प्रेम के आधार पर गठित किया है; किन्तु उन्होंने भगवान् का कोई रूप नहीं माना। वैष्णवों ने वास्तविक आकार में भगवान् की कल्पना की है। भगवान् की विराट् सत्ता के भीतर रहते हुए

जीव रहकर ही, परमात्मा का आस्वादन करना चाहता है—वह शुद्ध चैतन्य ईश्वर नहीं बनना चाहता। यही वैष्णवों का धर्म-मत है।

१—(क) सगुन सरूप रहत उर अंतर, निर्गुन कहा करौं ।

निसिदिन रसना रटत स्याम गुन, का करि जोग मरौं ॥

(ख) जाकी कहूँ थाह नहि पैए, अगम अपार अगाधै ।

गिरिधरलाल लुबीले मुख पर, इतने बाँध को बाँधै ॥

२—(ग) जिहिं उर कमलनयन बसत हैं, तिहिं निर्गुन क्यों आवै ।

सूरदास सो भजन बहाऊँ, जाहि दूसरो भावै ॥

(ख) स्वाम गात सरोज आनन, ललित अति मृदु हास ।

सूर ऐसे रूप कारन, मरत लोचन प्यास ॥

भी जीवात्मा विरह-वेदना अनुभव करता है और उनके अखंड रूप की उपलब्धि करने के निमित्त व्यग्र रहता है ; किंतु उनके साथ—अद्वैतवादियों की तरह—एकीभूत होने की आकांक्षा नहीं करता। वैष्णवों ने भगवान् के एक मानवीय रूप की कल्पना कर मानवीय स्थूल प्रेम के आदर्श से अपना प्रेम व्यक्त किया है। उन्होंने जीवात्मा और परमात्मा को मानवीय आकार देकर उन दोनों के भीतरी संबंध को प्रेमिक-प्रेमिका के आकर्षण के रूप में व्यक्त किया है। किंतु मधुर (शृंगार) रस के सब लक्षणों को व्यक्त करते हुए वैष्णव कवियों की अधिकांश रचनाओं में अश्लीलता का धब्बा लग गया है। इंद्रियों की भाषा के द्वारा अतींद्रिय विषयों की व्याख्या करने में यह अवश्यंभावी है।

स्थान-स्थान पर सूरदास की कविता रुचि-विरुद्ध विवेचित हो सकती है<sup>१</sup>। किंतु स्मरण रखना चाहिए कि किसी रस के वर्णन में उस रस के अंतर्गत जितने प्रकार के आवेगों तथा भावों की उत्पत्ति हो सकती है उन सबके विस्तृत विश्लेषण में ही रस-शास्त्रानुसार काव्य की श्रेष्ठता प्रकट होती है। शृंगार

१—आजु नैदंनं रंग भरे ।

बिबिलोचन सुबिसाल दोउन के, चितवत चित्त हरे ।  
 भामिनि मिले परम सुख पायो, मंगल प्रथम करे ॥  
 कर सौ करज कर्यो कंचन ज्यों, अंबुज उरज धरे ।  
 आलिंगन दै अधर पान कर, खंजन खंज लरे ।  
 हठ करि मान कियो नव भामिनि, तब गहि पाई परे ।  
 ले गये पुलिन-मध्य-कालिंदी, रस-बस अनंग अरे ।  
 पुहुप मंजरी मुक्तनि माला, अंग अनुराग मरे ।  
 सुरति नाद मुख बेनु सुधा सुनि, ताप अनतप जो टरे ॥

रस के वर्णन में जो-जो कार्य वा भाव आज-कल अश्लील गिने जाते हैं, वे उस रस के अंग हैं, उनको छोड़ देने से रस संपूर्ण-तया परिस्फुट नहीं होता ।

अश्लीलता के वर्णन के अभिप्राय से सूरदास काव्य-प्रणयन में प्रवृत्त नहीं हुए थे । उनकी काव्य-रचना का उद्देश्य था भगवान् के लीला-माधुर्य का आस्वादन करना तथा कराना । उनकी व्याख्या में यदि कहीं अश्लीलता का सीमोल्लंघन भी हुआ हो तो हम यह कहना उचित समझते हैं कि वे जिस काल में अवतीर्ण हुए थे और जिस वातावरण में जीवित थे, उसमें और उसके पूर्ववर्ती काल में इस प्रकार का स्थूल वर्णन दोष नहीं समझा जाता था । उन्होंने प्राचीन रीति का अनुसरण किया है । कालिदास ने ' कुमार-संभव ' के समग्र अष्टम सर्ग में हर-पार्वती का संभोग-वर्णन किया है<sup>१</sup> । जयदेव भी इस विषय में निरपराध नहीं<sup>२</sup> । विद्यापति के अनेक पदों ने अश्लीलता

१—सस्वजे प्रियमुरोनिपीडनं प्रार्थितं मुखमनेन नाहरत् ।

मेखलाप्रणयलोलतां गतं हस्तमस्य शिथिलं ररोध सा ॥

—( कु० सं०, ८, १४ )

क्लिष्टकेशमवलुप्तचन्दनं व्यत्ययार्पितनखं समत्सरम् ।

तस्य तच्छिदुरमेखलागुणं पार्वतीस्तमभून्न तृप्तये ॥

—( कु० सं०, ८, ८३ )

“Nor Eve refused the rights mysterious of  
connubial love.”

*Milton's Paradise Lost*

२—(क) श्लिष्यति कामपि चुम्बति कामपि कामपि रमयति<sup>३</sup> वामाम् ।

पश्यति सस्मितचारुपरामपरामनुगच्छति वामाम् ॥

—(गीतगोविंद, १, ४६)

की सीमा का अतिक्रम किया है<sup>१</sup> । पूर्व-काल में नायक-नायिका के संभोग का विवरण न देने से काव्य अंगहीन विवेचित होता था ।

वृंदावन की लीला में श्रीकृष्ण पुरुष हैं और गोपियाँ प्रकृति । विष्णु-पुराण वा श्रीमद्भागवत में 'राधा' का नाम नहीं पाया जाता । केवल हरिवंश के एक स्थान में इंगित-मात्र है । इससे अनुमान होता है कि 'हरिवंश' भागवत का परवर्ती है । जयदेव द्वादश शतक के अंत में विद्यमान थे । उन्होंने राधाकृष्ण की लीला गाई है । दार्शनिकों में निर्बार्काचार्य ने अपने ब्रह्मसूत्रों की व्याख्या में सबसे पहले राधा-कृष्ण की उपासना की घोषणा की है । निर्बार्क का जन्म विक्रम-संवत् १२१६ में हुआ था । अतएव वे जयदेव के समकालीन थे । इससे अनुमान होता है कि जयदेव और निर्बार्क के कुछ समय पहले ही किंवदंती वा साहित्य-क्षेत्र में 'राधा' नाम का आविर्भाव हुआ था ; क्योंकि गाथा-सप्तशती में 'राधा' का नाम मिलता है ।

(ख) दोर्भ्यां संयमितः पयोधरभरेणापीडितः पाणिजै-  
राविद्धो दशनैः क्षताधरपुटः श्रोणीतटेनाहतः ।  
हस्तेनानमितः कचेऽधरसुधापानेन सम्मोहितः  
कान्तः कामपि तृप्तिमाप तदहो कामस्य वामा गतिः ॥

—(गी० गो०, १२, ११)

१—थरथरि काँपल लहुलहु भास । लाजे न बचन करये परकास ॥  
आज धनि पेखल बड़ बिपरीत । छन अनुमति छन मानइ भीत ॥  
सुरतक नामे मुदइ दुहुँ आँखी । पाओल मदन महोदधि साखी ॥  
चुंबन बेरि करइ मुख बंका । मिललह चाँद सरोरुह अंका ॥  
नीबिबंध परस चमकि उठि गोरी । जानल मदन भांडारक चोरी ॥  
फुयल बसन हिय भुज बाहु साँठि । बाहिर रतन आँचर देइ गाँठि ॥

—(विद्यापति-पदावली)

कृष्ण-भगवान् के लीला-विषयक ग्रंथों में पहले केवल गोपियाँ ही थीं, 'राधा' न थीं। पीछे गोपियों के सार-स्वरूप 'राधा' की कल्पना हुई। गोपियाँ प्रकृति का व्यष्टि-भाव हैं और राधा समष्टि-भाव।

विष्णु-पुराण, भागवत तथा हरिवंश में श्रीकृष्ण की वृंदावन-लीला का वर्णन है, किंतु महाभारत में नहीं। महाभारत में वृंदावन का नाम तक नहीं, न ब्रजलीला का उल्लेख ! 'कृष्ण' द्वारकाधीश हैं, केवल इतना ही परिचय मिलता है। राजसूय-यज्ञ-कालीन शिशुपाल की निंदा प्रक्षिप्त मानी जाती है।

ब्रह्मवैवर्त-पुराण बहुत आधुनिक है। इसमें 'राधा' का वर्णन मिलता है। सूरदास के समय 'राधा' का नाम और राधा-कृष्ण की लीलाएँ अपरिचित न थीं। उनको अपने गुरु श्रोवणभाचार्य से इस विषय का उपदेश भी मिला होगा।

सृष्टि के आदि से ही प्रकृति और पुरुष की लीला चल रही है। वैष्णवगण कहते हैं कि वृंदावन की लीला के लिए भगवान् ने प्रकृति के प्रतीक-स्वरूप 'राधा' नाम का एक पृथक् विग्रह उत्पन्न किया और स्वयं भी आकार ग्रहण किया। 'ईश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदानन्दविग्रहः।' आनन्द-स्वरूप के विकार से जिस शक्ति का विकास होता है उसका नाम है 'ह्लादिनी' वा 'राधा'। पुरुष का ही रूपांतर है प्रकृति, अतएव राधा-कृष्ण अभिन्न हैं। राधा-कृष्ण का विहार ही आदर्श शृंगार रस का विलास है। श्रीकृष्ण हैं सौंदर्य के आधार, शृंगार रस के मूर्तिमान विग्रह तथा नायक-शिरोमणि, और राधा हैं सौंदर्य की प्रतिमा, शृंगार रस की मधुरिमा और आदर्श नायिका। अतएव

१ — अजोपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन् ।

प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया ॥—(गीता, ४, ६)

राधा-कृष्ण की उपासना है सौंदर्य की उपासना—रस-स्वरूप की भावना ।

वैष्णवगण और भी कहते हैं कि श्रोकृष्ण के साथ राधा तथा गोपियों का विहार प्राकृत विहार नहीं, वरन् अप्राकृत है । कारण, श्रोकृष्ण हैं चिन्मय विग्रह और व्रज-देवियाँ चिन्मयी । व्रज-लीला है विशुद्ध प्रेम-लीला । माया के राज्य में माया का विकार-स्वरूप 'काम' है । किंतु चिन्मय राज्य में 'काम' नहीं रह सकता । चिन्मय राज्य केवल प्रेम का राज्य है । वहाँ सब आनन्दमय है । कामविजय ही इस लीला का उद्देश्य है । "व्रज-वधूगण के संग विष्णु की रास-लीला को श्रद्धा के साथ जो सुनता वा सुनाता है, वह धीरे मनुष्य परा भक्ति प्राप्त कर हृदय के रोग-स्वरूप काम का सदा के लिए त्याग करने में समर्थ होता है ।" अतएव इसमें किसी प्रकार की अश्लीलता का आक्षेप नहीं किया जा सकता । वैष्णवों के मतानुसार श्रोकृष्ण ही एकमात्र पुरुष हैं—शेष सब प्रकृति है । अतएव जीव भी प्रकृति है । प्रकृति और पुरुष नित्य-संपृक्त हैं । भागवतादि ग्रंथों में इसका रूपक-मात्र वर्णित हुआ है । नव्य उपनिषद् गोपाल-तापनी में समग्र व्रज-लीला ही रूपक के समान व्याख्यात हुई है । प्रकृति और पुरुष की घनिष्ठता को मानव-हृदय में स्पष्ट करने के लिए ही भगवान् ने अवतार-ग्रहण किया था । रास-लीलाप्रांगण में प्रत्येक गोपी अनुभव कर रही थी कि कृष्ण केवल मेरे ही पार्श्ववर्ती हैं । इस प्रकार के अनुभव से क्या उपनिषदोक्त एक-शाखा-स्थित दो पत्तियों के सदृश जीवात्मा के साथ परमात्मा का अवस्थान ध्वनित नहीं होता ? सूरदास ने कहा है—  
"वै अभिगति अविनासी पूरन, सब घट रहै समाई ।"

१ — विक्रीडितं व्रजवधूरिदञ्च विष्णोः श्रद्धान्वितो नु शृणुयादथ वर्णयेद् यः ।  
भक्तिं परां भगवति प्रतिलभ्य कामं हृद्रोगमाश्वपहिनोत्यचिरेण धीरः ॥

सूरदास ने प्रकृति-पुरुष ( जीवात्मा-परमात्मा ) के विषय में  
जैसा बताया है, वही असल बात है—

ब्रज हो वसे आपुहिं विसरायो ।

प्रकृति पुरुष एकै करि जानहुँ, बातनि भेद बतायो ॥

जल थल जहाँ तहाँ तुम बिनु नहिं, भेद उपनिषद् गायो ।

द्वे तनु, जीव एक, हम तुम दोउ, सुख कारन उपजायो ॥

अर्थात् “ ब्रज में अवतीर्ण होकर तुम आत्म-विस्मृत हो गए हो । मैं प्रकृति और पुरुष को एक ही मानता हूँ । उनका भेद केवल बातों में है । जल-स्थल में और जहाँ-तहाँ (सर्वत्र) तुम्हारे सिवा कुछ भी नहीं है, यह रहस्य उपनिषदों में गाया गया है । देह दो हैं, किंतु जीव ( आत्मा ) एक ही । ‘ मैं और तुम ’—यह भेद-भाव तुम्हीं ने आनंदोपभोग के लिए उत्पन्न किया है । ”

सूरदास भेद में भी अभेद को प्रत्यक्ष देखते थे । श्रीकृष्ण के ब्रह्मत्व में उनका अटूट विश्वास था । (परमात्मा यथार्थ में निर्गुण हैं और उनका स्वरूप है एक निःसंबंध निरपेक्ष चैतन्य । लोला के लिए ही वे सगुण होते हैं ।)

सूरदास का सिद्धांत उनके कुछ पदों में मिलता है, जिनमें से एक यह है—

सदा एकरस एक अखंडित, आदि अनादि अनूप ।

कोटि कल्प बीतत नहिँ जानत, बिहरत जुगल स्वरूप ॥

सकल तत्त्व ब्रह्मांड-देव पुनि, माया सब विधि काल ।

प्रकृति पुरुष श्रीपति नारायण, सब हैं अंश गोपाल ॥

कर्मयोग पुनि ज्ञान उपासन, सब ही भ्रम भरमायो ।

श्रीवल्लभ प्रभु तत्त्व सुनायो, लीला-भेद बतायो ॥

अर्थात्—“ महाविष्णु-स्वरूप श्रीकृष्ण अखंडित ( पूर्ण ) ब्रह्म हैं । वे अनादि और उपमरहित हैं, एक-रस (सदानिर्विकार) तथा आनंदमय हैं, सदा युगल-रूप में विहार कर रहे हैं—कोटि

कल्प बीत जाने पर भी वे इसका अनुभव नहीं कर सकते, अर्थात् उनके निकट काल की गति नहीं। वही पंचविंशति तत्त्व<sup>१</sup> और ब्रह्मांड-देव हैं। विधि, काल इत्यादि सब माया हैं। प्रकृति-पुरुष—श्री और ( उनके पति ) नारायण—सभी गोपाल ( महाविष्णु ) के अंश-मात्र हैं। कर्म, योग, ज्ञान, उपासना—सभी भ्रम ( माया ) के द्वारा आच्छन्न हैं।”

श्रीवल्लभाचार्य ने सूरदास को वैष्णव-सिद्धांत तथा लीला-रहस्य का जो उपदेश दिया था, ऊपर के पद में वह संक्षेप में व्यक्त हुआ है।

[युगलरूप में राधा-कृष्ण नित्य विहार कर रहे हैं। इस विहार के स्थान में केवल गोपियों ( मुक्त जीवों )<sup>२</sup> का प्रवेशाधिकार है। जो एक ही स्थान में सदा के लिए आबद्ध रहता और काल का अनुभव नहीं कर सकता, वह निर्गुण से अधिक भिन्न नहीं।]

शैशवावस्था में ही पूतना, बकासुर अघासुर इत्यादि के वध तथा गोवर्द्धन-धारण, अनल-पान, कालिय-मर्दन इत्यादि अलौकिक कार्य संपन्न करने के कारण गोपियाँ श्रीकृष्ण को ईश्वर ही जानती थीं। राधा और कृष्ण दोनों परस्पर के प्रेम से मुग्ध थे। सूरदास के काव्य में राधा-कृष्ण के रूप का वर्णन अति मधुर है। यहाँ दा-तीन पद उद्धृत किए जाते हैं—

१—सत्त्व, रजः और तम—इन तीनों गुणों की साम्यावस्था को ‘प्रकृति’ कहते हैं। प्रकृति से ‘महत्’ ( बुद्धि or intellect ), महत् से ‘अहंकार’ ( individuality ), अहंकार से पञ्च-तन्मात्र ( निर्विशेष सूक्ष्म पञ्चभूत ), तन्मात्र स्थूल-भावापन्न होने से ‘स्थूल-भूत’ ( क्षिति, अप्, तेज मरुत् और आकाश ) और ‘एकादश इंद्रिय’ ( ज्ञानेंद्रिय, कर्मेंद्रिय और मन ) उत्पन्न होते हैं। इन चौबीस तत्त्वों के अतिरिक्त एक तत्त्व ‘पुरुष’ है।

२—कबीरदास ने इनका नाम ‘हंस’ दिया है।

## श्रीकृष्ण

हरिमुख निरखत नैन भुलाने ।

ये मधुकर रुचि पंकज-लोभी ताही ते न उड़ाने ॥

कुंडल मकर कपोलन के ढिग जनु रबि रैनि बिहाने ।

भ्रुव सुंदर नैननि गति निरखत खंजन मीन लजाने ॥

अरुन अधर ध्वज कोटि बज्र द्युति ससिगन रूप समाने ।

कुंचित अलक सिलीमुख मानों लै मकरंद निदाने ॥

तिलक ललाट कंठ मुकुतावलि भूषनमय मनि साने ।

सूरदास स्वामी अंग नागर ते गुन जात न जाने ॥

×

×

×

लोचन हरत अंबुज मान ।

चकित मन्मथ सरन चाहत धनुष त्यजि निज बान ॥

चिकुर कोमल कुटिल राजत रुचिर बिलम कपोल ।

नील नलिन सुगंध ज्यों रस थकित मधुकर लोल ॥

स्याम उर पर परम सुंदर सजल मोतिन हार ।

मनों मरकत-सैल तें बहि चली सुरसरि-धार ॥

सूर कटि पट पीत राजत सुभग कृबि नैदलाल ।

मनों कनक-लता-अवलि-बिच, तरल विटप-तमाल ॥

[ जैसे मेघ और विद्युत् में अविच्छिन्न संबंध है, उस प्रकार उनमें और उनके पीत वस्त्र में नित्यसंबंध है । जैसे वर्षा के प्रारंभ में सौदामिनी-युक्त वर्षणोन्मुख नवीन मेघ नयनाभिराम होता है और वर्षण से धरातल को सुशीतल करता है, वैसे ही नवयौवन-संपन्न श्रीकृष्ण प्रेमधारा-वर्षण-पूर्वक प्रेमिक भक्तों की तप्त प्रेम-तृषा शांत करते हैं (गोपाल-तापनी) । अन्य किसी अवतार में भगवान् के वस्त्र की विशिष्टता का पता किसी ग्रंथ में नहीं मिलता । ]

## श्रीराधा

डोलति बाँकी कुंज-गली ।

ब्रज-बनिता मृगसावक-नैनी बोनति कुसुम-कली ॥

कमल-बदन पर बिथुरि रहीं लट कुंचित मनहुँ अली ।

अधर-बिंब नासिका मनोहर दामिनि दसन क्ली ॥

नाभि परस लों रस-रोमावलि कुच जुग बीच चली ।

मनहुँ बिबर तें उरग रिंग्यो तकि गिरि कै संधि-थली ॥

पृथु नितंब कटि क्रीन हंस-गति जघन सघन कदली ।

चरन महावर नूपुर मति में बाजति भाँति भली ॥

प्रत्येक शिल्पी के मानस-क्षेत्र में सौंदर्य का एक आदर्श बना रहता है और वह अपने कल्पना निहित आदर्श को वास्तविक रूप देने के लिए व्याकुल रहता है । जिसका आदर्श जितना ऊँचा होता है और प्रकाशन-शक्ति जितनी पटु एवं सुंदर तथा हृदय-ग्राहिणी होती है, उसे उतनी ही—उसी परिमाण में—सफलता प्राप्त होती है । सूरदास की रचना का विषय महान्, आदर्श उच्च और वाक्विभव समृद्ध था । इन्हीं कारणों से उनकी कविता इतनी मधुर और मर्मस्पर्शनी हो सकी है ।

अच्छे कवियों को उपमाओं के लिए आकाश-पाताल खोजना नहीं पड़ता । सूरदास की उपमाएँ प्रायः स्वतः आ गई हैं । किंतु कहीं-कहीं उपमा-संग्रह के लिए उन्हें भी प्रयास करना पड़ा है । कहीं-कहीं तो उपमाओं की प्रचुरता से जी ऊबने लगता है । तथापि कविधर के गुण-सन्निपात में अणु-परिमाण दोष निमज्जित हो गया है ।

आज-कैल योरप से हमारे देश में एक नए मत की अवतारणा हुई है—‘पति अपनी पत्नी से प्रेम का दावा नहीं कर सकता, मन जिसकी ओर दौड़ता है उसी को प्रेम अर्पित हो सकता है ;

क्योंकि 'प्रेम' हृदय की वस्तु है, और किसी का हृदय बल के द्वारा अधिकृत नहीं हो सकता ।'

‘सहजिया’-संप्रदाय का मत भी प्रायः यही है ।

जो नारी अपने पति पर अनुरक्त न होकर अन्य पुरुष पर अनुरक्त होती है वह रस-शास्त्र के अनुसार परकीया नायिका, और जो अपने पति पर अनुरक्त रहती है वह स्वकीया नायिका, कहलाती है । अपने पति के साथ मिलने का जो आग्रह होता है, उससे कहीं अधिक परकीया नारी का उपपति से मिलने का आवेग होता है । इस तीव्र आवेग के द्वारा परिचालित होकर गोपियों ने श्रीकृष्ण—अर्थात् भगवान्—को आराधना की थी । ऋग्वेद ( ६-३२-१ ) में ऐसा ही भाव पाया जाता है—“ योषा जारमिष प्रियम् । ” अर्थात् ईश्वर के प्रति जीवात्मा के प्रेम का आवेग, उपपति के प्रति परकीया नारी के प्रेम के आवेग की भाँति ही, तीव्र होना चाहिए । परकीया नायिका के भाव के साथ ही प्रत्येक साधक को साधना-कार्य में प्रवृत्त होना उचित है, नहीं तो भगवत्-प्राप्ति नहीं हो सकती । कार्डिनल न्युमैन भी प्रायः यही कह गए हैं<sup>१</sup> ।

कई योरपीय उपन्यासकारों का अनुकरण करते हुए इस देश के कुछ आधुनिक उपन्यासकार स्वाधीन प्रेम की पोषकता करके निंदनीय हुए हैं । स्थूल दृष्टि से देखने पर इस श्रेणी के औपन्यासिकों का अपराध वैष्णव कवियों के अपराध से अधिक नहीं ! स्थूल भाव से ही श्रीकृष्ण के प्रति गोपियों के अनुराग में परकीया नायिका के लक्षण देखे जाते हैं । किंतु श्रीकृष्ण के

---

१ “ If thy soul is to go into higher spiritual blessedness, it must become woman ; yes, however manly thou mayst be among men.”—*Newman*.

ईश्वरत्व में गोपियों का यथार्थ विश्वास था। वैष्णवों की हृद्गत वासना ही यह है कि श्रीकृष्ण के प्रति अनुराग के द्वारा, अर्थात् प्रेम तथा भक्ति की साधना के द्वारा, वे भगवान् का सालोक्य प्राप्त करें, अर्थात् उनके साथ वैकुण्ठ में एकत्र अवस्थान करें, और अधिकतर साधना के द्वारा सायुज्य के अधिकारी हो सकें। गोपियों ने सौभाग्यवश ऐसे युग में और ऐसे स्थान में जन्म-लाभ किया था कि उन्होंने मनुष्य की ईप्सित वस्तु को नर-देह में अवस्थान करते हुए पाया था। उस कृष्ण-रूपी भगवान् की रूप-माधुरी से मुग्ध हो जाना उनके लिए अस्वाभाविक न था। उनके साथ एक ही स्थान में रहकर और उनकी सेवा करके वे धन्य हुई थीं। काम्य वस्तु को करतल-गत पाकर वे उन्हें छोड़ न सकी थीं। सूरदास की गोपियों ने कहा था—

मन कम बचन नंदनंदन को नेकु न झाँड़ौं पास।

कैसे रहै परै री सजनी, एक गाउँ को बास ॥

इस पृथ्वी पर ही गोपियों का सालोक्य-लाभ हुआ था। संभवतः उनकी नारी-देह-जनित वासनाएँ भी चरितार्थ हुई थीं। अतएव एक प्रकार से उनको सायुज्य भी प्राप्त हुआ था। इस कारण से गोपियाँ साधारण परकोया नारियों की श्रेणी में नहीं गिनी जा सकतीं। जो हो, शताब्दियों से गोपियों की लीला-कथा की रुचि-हीनता भक्तों तथा साहित्यिकों के समाज में केवल उपेक्षित ही नहीं हुई है, प्रत्युत आदृत भी होती चली आई है। श्रीमद्भागवतकार और अन्यान्य वैष्णव-कविगण यदि अपराधी हुए हों, तो सूरदास भी अपराधी हैं। कम से कम परंपरागत रीति के अनुसार भी उनका अपराध क्षमा करना उचित है। शृंगार रस के कवि होने की दृष्टि से तो उन्होंने कुछ भी अपराध नहीं किया; क्योंकि उन्होंने इस रस को संपूर्णता दी है। पुनः भक्त होने की दृष्टि से भी राधा-कृष्ण के विहार में उन्होंने

प्रकृति और पुरुष के—भक्त और भगवान् के—मिलनानन्द का ही अनुभव किया है। सुरुचि-संपन्न पाठकों के हृदय में जो कविताएँ व्यथा पहुँचाती हैं, उनको छोड़ देने से भी इस रस की अन्यान्य असंख्य कविताएँ अति मनोहर हैं।

सूरदास के काव्य में कृष्णानुरक्त गोपियों में से अधिकांश कुमारी हो हैं। राधा भी कुमारी हैं। वृंदावन छोड़कर श्रीकृष्ण के मथुरा चले जाने पर गोपियों ने प्रोषित-भर्तृकाओं के समान आचरण किया था। उन्होंने आजीवन अपने पातिव्रत धर्म का पालन किया था और इस संबंध में उद्धव से उन्होंने स्पष्ट कहा भी था—

हम अलि गोकुलनाथ अराध्यो ।

मन कम बचन हरि सों धरि पतिव्रत प्रेम जप तप साध्यो ॥

नायक-नायिका के दैहिक मिलन के पहले, दोनों के मन में जिस प्रेम का संचार होता है और मिलन की आकांक्षा उत्पन्न होती है, उसे 'पूर्वराग' कहते हैं। प्राचीन अलंकार-शास्त्र में 'पूर्वराग' शब्द नहीं मिलता। 'साहित्य-दर्पण' में इसका व्यवहार प्रथम दृष्टिगत होता है। विश्वनाथ कविराज, महाप्रभु चैतन्य के परवर्त्ती थे। सुना जाता है कि सनातन गोस्वामीजी को उपदेश देकर वृंदावन की ओर भेजते हुए चैतन्यदेव ने प्रेम की अभिव्यक्ति के स्तरों का निर्देश कर दिया था और उसी समय से वैष्णव-साहित्य में प्रेम के इस प्रथम तथा मधुर स्तर का अधिक उपयोग होने लगा है। अतएव यह आश्चर्य का विषय नहीं कि सूरदास के काव्य में 'पूर्वराग' का विशद वर्णन नहीं पाया जाता। शकुंतला इत्यादि में जैसे नायक-नायिका के प्रथम दर्शन के परवर्त्ती विरह का वर्णन संक्षेप में है, वैसे ही सूरदास के काव्य में प्रथम साक्षात्कार के बाद परस्पर के अदर्शन से उत्पन्न तीव्र वेदना को व्यक्त करनेवाले पद थोड़े हैं। बंगाली वैष्णव कवियों ने 'पूर्वराग'

पर बहुत ध्यान दिया है और उसकी व्याख्या में चमत्कार भी दिखाया है। मिलन के पीछे के विरह का सूरदास-लिखित वर्णन अति मर्मस्पर्शी है। देखिए—

बिछुरे श्रोत्रजराज आज तौ नयनन ते परतीति गई।  
उठि न गई हरि सँग तब ही ते ह्वै न गई सखि स्याममई ॥  
रूप-रसिक लालची कहावत सो करनी कछुवै न भई।  
साँचे कूर कुटिल ए लोचन वृथा मीन छवि क्रीनि लई ॥  
अब काहे जल मोचत सोचत समौ गए ते सूल नए।  
सूरदास याही ते जड़ भए इन पलकन हो दगा दए ॥

×

×

×

×

काहे को पिय पिय हीं रटत हो पिय के प्रेम तेरो प्रान हरैगो।  
काहे को लेत नयन जल भरि-भरि नयन भरे तें कैसे सूल टरैगो ॥  
काहे को स्वास उसाँस लेति हो बैरो विरह को दावा जरैगो।  
झाल सुगंध पुहुपावलि हारु छुए तें हिय हार जरैगो ॥  
बदन दुराय बैठि मंदिर में बहुरि निसापति उदय करैगो।  
सूर सखी अपने इन नैननि, चंद्र चितै जिनि चंद्र जरैगो ॥

अब देखना चाहिए कि सूरदास के जीवन के साथ उनके काव्य का सामंजस्य है या नहीं। सूरदास आजीवन त्यागी थे। घल्लभाचार्य के द्वारा दीक्षित होने के बाद से उन्होंने अपना जीवन गोकुल में ही बिताया था। कृष्ण-विषयक पद बनाकर और स्वयं उन्हें गाकर वे अपना समय काटते थे। अपने काव्य में उन्होंने जो कुछ व्यक्त किया है, सब भक्ति-प्रसूत है। वे श्रेष्ठ कवि तो थे ही, निपुण गायक और परम भक्त भी थे। भक्ति ही उनके काव्य तथा संगीत का उत्स थी। वे भक्ति-रस में आकंठ निमग्न थे।

कोमल कांत पद जितने 'सूरसागर' में पाए जाते हैं, उतने अन्य कवियों के काव्यों में नहीं। मानव-जीवन की जो वेदनाएँ

मनुष्य के मर्म-स्थल को स्पर्श करती हैं, उनको स्पष्ट करने में जो कवि जितना समर्थ हुआ है, उसको उतनी ही ख्याति मिली है। शेक्सपीयर के जगद्वरेण्य होने का यही कारण है। सूरदास ने मनुष्य-हृदय के सार्वजनीन आवेगों को अति निपुणता से परिस्फुट किया है। इस दिशा में उनका कृतित्व असाधारण है। उनका शिल्प प्रधानतः दो रसों के भीतर सीमित है। फिर भी उन रसों के अंकन में वे अद्वितीय हैं। उन्होंने वात्सल्य तथा शृंगार रसों की आलेख्यावली इस सूक्ष्मता तथा निपुणता से चित्रित की है कि उसे देखकर चित्त चकित और मुग्ध हो जाता है—उसके माधुर्य का आस्वादन कर मन परितृप्त हो जाता है। भाषों की कोमलता और विचित्रता, विन्यास की अपूर्वता और रमणीयता तथा शब्दों के लालित्य और भंकार की दृष्टि से हिंदी के महा-कवियों में सूरदास का आसन बहुत ही उच्च है। भक्तों की दृष्टि में तो उनके शृंगार-रसात्मक पद भी भक्ति-रसात्मक ही प्रतीत होते हैं।

विद्यापति भी बड़े अच्छे कवि थे। उनके पदों की कोमलता और लालित्य भी प्रसिद्ध है। इन बातों में कदाचित् वे सूरदास से श्रेष्ठ थे, किंतु सूरदास की भक्ति की गंभीरता उनके पदों में विरल है। हाँ, एक कवि चंडीदास थे, जिनके पदों की आवेग-भरी सरलता की कोई तुलना नहीं।

सूरदास के पदों में भी भक्ति की मंजुल तरंगें लहरा रही हैं। वे जीवनावसान के समय दो स्वरचित पदों—“भरोसो दूढ़ इन चरनन करो” और “खंजन-नैन रूप-रस माते”—की आवृत करते हुए ही चिरानंदमय अमरधाम को सिधारे थे। भारतेंदु हरिश्चंद्र ने इस प्रसंग में निम्नलिखित सुंदर दोहा लिखा है—

मन समुद्र भयो सूर को, सीप भए चख लाल।

हरि मुक्ताहल परत ही, मूँदि गए ततकाल ॥







